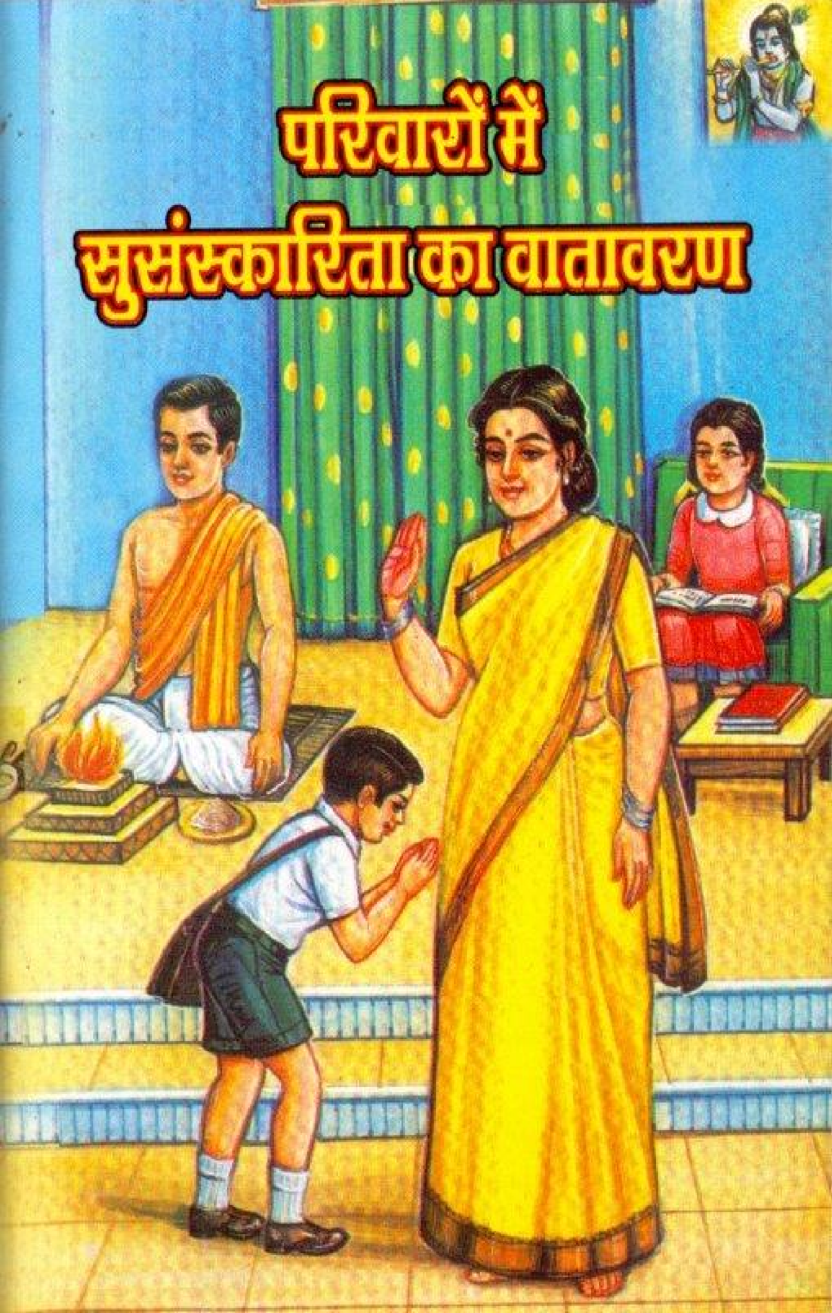
परिवारों में सुसंस्कारिता का वातावरण



परिवारों में सुसंस्कारिता का वातावरण

*

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : १०.०० रुपये

जन्म-मरण, पालन-पोषण, आत्म-रक्षा और वंशवृद्धि की दृष्टि से मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं पड़ता। पर ज्ञान, विवेक, सद्भावना, परोपकार, परमार्थ आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जो मनुष्य में ही पाई जाती हैं। पर ये भी सब मनुष्यों में नहीं होतीं, वरन् जिनको जन्म लेने के पश्चात् अपने घर में, परिवार में, अड़ोस-पड़ोस में, संगी-साथियों में सुसंस्कार ग्रहण करने का अवसर मिलता है, वे ही 'मानव' नाम को चरितार्थ करने में सफल होते हैं। इसलिए परिवारी जनों का यह कर्त्तव्य ही नहीं, परम धर्म है कि यदि वे संतानोत्पादन करते हैं तो उनको सुसंस्कारी बनाने योग्य वातावरण भी अपने यहाँ बनाएँ।

सुसंस्कारिता संवर्धन एक महती समाज सेवा

मनुष्य को इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। यह है भी इस विश्व वसुधा का राजकुमार, परमात्मा का ज्येष्ठ पुत्र। वे कौन-सी विशेषताएँ हैं जिनके कारण मनुष्य को यह गौरव मिला है ? भाषा, जिसके माध्यम से वह अपने आप अन्य लोगों के सामने व्यक्त कर लेता है। परंतु अन्य प्राणी भी अपनी भाषा में एक दूसरे से भाव व्यक्त कर अपना काम चला लेते हैं। भले ही उनकी अभिव्यक्ति की सीमा सीमित हो, परंतु उसके बिना उनका कोई काम नहीं हो सकता तो फिर क्या बुद्धि की विलक्षणता वह विशेषता है जिसके कारण उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ होने का गौरव मिला है। अन्य प्राणियों में भी बौद्धिक विलक्षणता के ऐसे-ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि उन्हें देखकर दाँतों तले अँगुली दबा लेना पड़ता है। मनुष्यों की बौद्धिक क्षमता तो फिर भी अन्य लोगों से सीखी गई, विरासत में प्राप्त हुई होती है। पशु-पक्षियों और मानवेतर प्राणियों को कहाँ वैसी सुविधा प्राप्त होती है ? फिर भी कई बार उनमें मनुष्यों को भी हतप्रभ कर देने वाली विलक्षण बुद्धि देखी जाती है। मनुष्य के पास वैसा शरीर भी नहीं है कि वह दूसरे सभी प्राणियों से इक्कीस सिद्ध हो।

शारीरिक बल की दृष्टि से तो मनुष्य दूसरे अन्य कई प्राणियों से कमजोर है ही। शरीर की मूल-प्रवृत्तियाँ भी कोई भिन्न नहीं हैं कि उनके कारण वह श्रेष्ठ कहा जा सके। भूख, प्यास, नींद, प्रजनन आदि शरीर की मूल प्रवृत्तियों की दृष्टि से मनुष्य और अन्य प्राणियों में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। मनुष्य को अन्य प्राणियों के समान भूख लगती है, उसे भी प्यास सताती है, वह भी अन्य प्राणियों के समान संतानोत्पादन करता है। ये सब प्रवृत्तियाँ 'मनुष्यों और अन्य प्राणियों में समान होती हैं। अंतर होता है तो केवल इतना ही कि

मनुष्य के क्रियाकलापों में सुघड़ता होती है। अन्य प्राणियों के क्रियाकलापों में अनगढ़ता, ज्यों-त्यों कर लेने की हड़बड़ाहट होती है।

यह सुघड़ता तब से आरंभ हुई, मनुष्य ने अपने क्रियाकलापों, आचरण और व्यवहारों को जब से संस्कारित करना आरंभ किया, तभी से वह अन्य प्राणियों की पंक्ति से उठकर आगे बढ़ सका। उस संस्कारित करने की प्रक्रिया के साथ ही मानव-सभ्यता का आरंभ हुआ और उसने संस्कृति की यात्रा पर पग बढ़ाए। इस जागृति ने मनुष्य जाति को समग्र रूप से सभ्य और सुसंस्कृत बनाया। आज भी कई क्षेत्रों में आदिवासी पिछड़े लोग सभ्यता की दृष्टि से काफी पीछे हैं। इसका कारण यही है कि वे सभ्यता के विकास में अन्य समुदायों के साथ कदम से कदम मिलाकर न चल सके।

इस सभ्यता के विकास से जहाँ मनुष्य समाज ऊँचा उठा, वहीं एक दूसरा पक्ष भी है जिसके कारण मनुष्य अन्य प्राणियों से ही नहीं अन्य लोगों से भी भिन्न होता है। शरीर का आकार-प्रकार, दुबला-पतला, मोटा-छोटा, लंबा-नाटा होना नहीं, मनुष्यों में ही भिन्नता होने का कारण उनका अपना व्यक्तित्व है और इस व्यक्तित्व के आधार पर ही वह अन्य प्राणियों और मनुष्यों से श्रेष्ठ या निकृष्ट बनता है।

यह व्यक्तित्व ही मनुष्य की मूल संपदा है। इसकी श्रेष्ठता और निकृष्टता के आधार पर ही किसी व्यक्ति को श्रेष्ठ या निकृष्ट होना निर्भर है। प्रश्न उठता है कि यह व्यक्तित्व क्या है ? मनुष्य जो दिखाई देता है, आचरण, रहन-सहन व बोल-चाल और व्यवहार का जैसा जो कुछ प्रभाव छोड़ता है क्या वही व्यक्तित्व है ? इसका उत्तर निश्चित ही 'नहीं' में है। व्यक्तित्व में ये सब बातें समाहित तो हैं पर वह इन सबके जोड़ से भी ऊपर बहुत कुछ भिन्न है। आँख से देखने पर तो व्यक्तित्व शरीर की बनावट, आकर्षक साज-सज्जा, आकर्षक चाल-ढाल और शिष्टाचार पर अवलंबित दीखता है, पर परख की दृष्टि जब गहराई में प्रवेश करती हैं, तो गुण, कर्म, स्वभाव का दृष्टिकोण एवं चरित्र का समुच्चय ही व्यक्तित्व की कसौटी बन जाता है। सम्मानित और तिरस्कृत, समुन्नत और पतित—प्रखर और

पिछड़े लोगों के बीच पाया जाने वाला अंतर तो परिस्थितिजन्य दीखता है, पर वस्तुतः यह विभेद अंतःस्थिति का होता है। यह अंतःस्थिति जो मान्यता-अभिरुचि और आदत के रूप में समूचे अंतराल पर कब्जा जमाए बैठी है। अंतःक्षेत्र से उठने वाली सुगंध अथवा दुर्गंध ही समीपवर्ती वातावरण को उल्लसित एवं कलुषित बनाती है। अंतराल ही बाह्य जगत में प्रतिबिंबित होता है और स्वर्गीय एवं नारकीय प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है। अपना ही स्वभाव समीपवर्ती लोगों के साथ सहयोग एवं विग्रह के अवसर रचता और इन्हें चित्र-विचित्र घटनाक्रमों के रूप में सामने ला खड़ा करता है।

जीवन का सबसे बड़ा उपार्जन एवं वैभव परिष्कृत व्यक्तित्व ही है। पग-पग पर मानवी अनुदानों और दैवी वरदानों के उपहार बरसाने वाला सौभाग्य और कुछ नहीं मनुष्य का स्व उपार्जित व्यक्तित्व ही है। कोई किसी को यदि वस्तुतः कोई ठोस अनुदान दे सकता है तो वह एक ही अनुग्रह है कि व्यक्तित्व को परिष्कृत करने में सहायता की जाए। अन्य संपदाएँ ऐसी हैं जिन्हें कोई किसी को कितने ही बड़े परिमाण में देकर भी वास्तविक हित साधन नहीं कर सकता। उत्तराधिकार में मिले धन का कितने लोग सदुपयोग कर पाते हैं ? कितने उसे देर तक सुरक्षित रखते हैं और कितने हैं जो बिना परिश्रम के मिली हुई कमाई से उत्पन्न होने वाली दुष्प्रवृत्तियों से अपने को बचा पाते हैं ? उपकार वही सार्थक है जो व्यक्तित्व को विकसित करने की सहायता के रूप में लिया या दिया जा सके। अनुग्रह वही धन्य है जो प्रखरता और प्रतिभा निखारने में सहयोग प्रदान करे। सौभाग्यशाली वे हैं जिनने सुसंस्कृत लोगों का सान्निध्य पाया। अन्यथा आदान-प्रदान तो इस दुनिया में चलते ही रहते हैं। कई बार तो साथियों द्वारा छूत की बीमारियों की तरह ऐसी बुरी आदतें भी लाद दी जाती हैं जो सर्वनाशी पतन पराभव का—दुःख दारिद्रय का कारण बनी हुई मरण पर्यंत त्रास देती रहती हैं। कई बार अनावश्यक अनुग्रह भी अभिशाप की तरह भारभूत और कष्टकारक सिद्ध होते हैं। बाजार में आदान-प्रदान ही तो होता है। यह एक विनिमय व्यवस्था भर है। लेन-देन की सौदागरी उपयोगी तो

है पर इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए अनुग्रह अनुभव किया जाए या कृतज्ञ हुआ जाए।

सुसंस्कारिता जिसे मिली उसने वह सब कुछ पा लिया जिसे पाकर मनुष्य जीवन का अमृतोपम रसास्वादन करने का अवसर मिलता है। आध्यात्मिकता, दृष्टिकोण की उत्कृष्टता और धार्मिकता व्यवहार की शालीनता को ही कहते हैं। शब्दों की ऊँचाई से किसी रहस्यवादी कल्पना में भटकने की आवश्यकता नहीं है। जिन भौतिक सिद्धियों का और आध्यात्मिक ऋद्धियों का वर्णन चमत्कारी एवं अलंकारिक भाषा में किया गया है वे समस्त विभूतियाँ मात्र सुसंस्कारिता की ही देन हैं। समुन्नत, सम्मानित और समृद्ध जीवन वस्तुतः सुसंस्कारों के कल्पवृक्ष का ही फलता-फूलता स्वरूप है।

अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता भी सुसंस्कृत व्यक्तियों की है, कहना चाहिए सुसंस्कारिता के अभिवर्धन की है। इन दिनों व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में जितनी भी समस्याएँ व्याप्त हैं, उनका एकमात्र कारण सुसंस्कृत व्यक्तियों का अभाव या सुसंस्कारिता के अभिवर्धन के लिए उपयुक्त वातावरण का न मिल पाना है। इसके अभाव में ही व्यक्तिगत जीवन में दोष-दुर्गुण, अनीति, अवांछनीयता और उनके कारण कई प्रकार के कष्ट-क्लेश तथा समस्याएँ उत्पन्न होती हैं तथा सामाजिक जीवन में अव्यवस्था, भ्रष्टता, आतंक और असुरक्षा व्यापती है।

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में व्याप्त कष्ट कठिनाइयों और समस्याओं के समाधान का एक ही उपाय है कि समाज में सुसंस्कारिता का वातावरण उत्पन्न किया जाए ताकि लोगों को सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन मिले। इसे यों भी कहा जा सकता है—सुसंस्कृत व्यक्तियों का निर्माण, सुसंस्कारिता का अभिवर्धन अपने युग की महती आवश्यकता है। यह कार्य एक सीमा तक तो प्रचार माध्यमों से भी पूरा हो सकता है। पर स्थायित्व लाने की अपेक्षा हो तो इतने मात्र से यह आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। इसके लिए अंतःचेतना के मर्मस्थल तक सुसंस्कारिता को पहुँचाना होगा।

प्रश्न उठता है कि संस्कारों की यह संपदा कहाँ से प्राप्त की जाए ? इसका एक ही उत्तर है कि वातावरण में सदाशयता उत्पन्न हो। ऐसा वातावरण जहाँ संव्याप्त हो, वहीं उस स्तर के संस्कार उत्पन्न होंगे। सुसंस्कारिता का वातावरण जहाँ संव्याप्त हो, इस स्तर के लोग जहाँ आत्मीयता की भाव-संवेदना और सहकारिता की रीति-नीति अपना कर चल रहे हों, वहाँ रहने वाला व्यक्ति सुसंस्कारी बन सकता है। इस संदर्भ में स्वाध्याय, सत्संग एवं मनन-चिंतन से भी उपयोगी प्रकाश मिल सकता है। निजी प्रयत्नों से भी उपयोगी प्रकाश मिल सकता है। निजी प्रयत्नों से भी आत्म निर्माण में बहुत कुछ प्रगति हो सकती है, किंतु जहाँ तक बाह्य अनुदानों का सवाल है, वहाँ उपयुक्त वातावरण वाला समर्थ शिक्षा संस्थान एक ही हो सकता है और वह है परिवार। परिवार में, व्यक्तित्व की ढलाई अनायास ही होती रहती है। न प्रशिक्षण करना पड़ता है और न प्रयत्न। योजना बनाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और न प्रेरणा देने अथवा दबाव डालने की। सब कुछ स्वचालित क्रम से होता रहता है और उस परिवार में रहने वाले उसी प्रकार ढलते चले जाते हैं जिस प्रकार कि छोटे बच्चे बड़ों का अनुकरण करके बोलना, चलना या अन्य व्यवहार करना सीख लेते हैं। यह तथ्य जितनी जल्दी समझ लिया जाए उतना ही उत्तम है कि सुसंस्कारिता उपलब्ध करने के लिए उस विशिष्टता के वातावरण से सुसंपन्न परिवार की नितांत आवश्यकता है। कुसंस्कार और दुर्गुण तो रास्ते चलते भी सीखे जा सकते हैं। मन का पतनोन्मुख प्रवाह अपने भीतर से संचित दुष्प्रवृत्तियों को उगा लेता है, पर श्रेष्ठता तो प्रयत्न साध्य एवं साधन साध्य है। यदि सुसंस्कारिता की, व्यक्तित्व की गरिमा समझी जाए और उस गरिमा पर वर्तमान की सुख-शांति एवं भविष्य की सुखद संभावना को निर्भर माना जाए तो यह तथ्य भी स्वीकार करना होगा कि परिवार का परिष्कृत वातावरण ही स्वर्ग है जिसमें रहकर देवताओं जैसी समर्थता एवं वरिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कुटुंबियों के लिए दैवी वरदान और स्वर्गीय ऐश्वर्य जैसी विभूतियाँ यदि किसी को उपलब्ध करानी हों तो उनके लिए कुबेर जैसी दौलत

छोड़ने या इंद्र जैसी सुविधा देने की आवश्यकता नहीं है। सुसंस्कारों का वैभव उपलब्ध कर सकने की संभावनाओं से परिपूर्ण वातावरण में रहने का अवसर उन्हें प्रदान करना चाहिए। यह ऊँचे से ऊँचे स्तर का अनुदान है जिसे कोई विवेकशील दूरदर्शी अपने प्रिय परिजनों के लिए दे सकता है। कहना न होगा कि ये उपलब्धियाँ कहीं अन्यत्र भेजकर प्राप्त नहीं कराई जा सकतीं। बाहर का रंग उड़ जाता है, टिकाऊ तो भीतर का ही होता है। सद्‌गुणों की संपदा परिष्कृत परिवारों में ही उपलब्ध की जा सकती है। अस्तु अपने लिए, अपने प्रियजनों के लिए सबसे अधिक सौभाग्य संपादन एक ही प्रकार हो सकता है कि परिवार की परंपरा में शालीनता का उच्चस्तरीय समावेश करने के लिए सच्चे मन से प्रबल पुरुषार्थ किया जाए।

घर की परिधि पारिवारिकता की सत्प्रवृत्ति सीखने और परिपक्व करने की पाठशाला-प्रयोगशाला है। यहाँ जो उपलब्ध किया गया है उसे किसी भी क्षेत्र में प्रयुक्त करके सफलता के लक्ष्य तक सरलतापूर्वक पहुँचा जा सकता है। यह प्रवृत्ति जहाँ भी पहुँचेगी सुखद परिणाम उत्पन्न करेगी। उद्योग उपार्जन के लिए चल रहे कारखानों में जहाँ मालिक मजदूरों के मध्य पारिवारिकता रहती है वहाँ धन और यश मिलने में कोई कमी नहीं रहती। जिन सार्वजनिक संगठनों में सदस्यों के बीच पारिवारिक सद्‌भाव सुदृढ़ होगा वहाँ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सुखद अवसर पग-पग पर मिलेंगे। समाज हो या शासन—मठ हो या जमात—आंदोलन हो या अभियान—संबद्ध लोगों के बीच जितनी पारिवारिक आत्मीयता होगी उसी अनुपात से अपना वर्चस्व सिद्ध करने और गौरवान्वित होते दृष्टिगोचर होंगे।

कहने का अर्थ यह है कि पारिवारिकता के वातावरण में ही व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाले उत्कृष्ट संस्कार उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि यह कार्य उसी वातावरण में संपन्न हो सकता है जिसमें मनुष्य निवास करता है। परिवार का वातावरण ही वह माध्यम है जिससे उसमें पलने वाले सभी छोटे बड़े प्रभावित होते और बनते ढलते हैं। शिक्षण बाहरी लोग भी दे सकते हैं पर संस्कार घनिष्ठों द्वारा ही मिलता है। छोटी आयु में यह प्रभाव अत्यधिक मात्रा में

ग्रहण किया जाता है किंतु आयु बढ़ने के बाद भी पारिवारिक वातावरण की प्रतिक्रिया निरंतर होती है और सुख दुःख की, उत्थान पतन की मनःस्थिति एवं परिस्थिति बनाने में असाधारण भूमिका संपन्न करती है।

परिवार का, पारिवारिक वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व को उठाने गिराने में जितना पड़ता है उतना अन्य समस्त साथियों एवं माध्यमों के संयुक्त साधनों का भी नहीं पड़ता। सुसंस्कृत परिजनों के बीच मनुष्य रुग्ण और दरिद्र रहकर भी जीवनयापन कर सकता है। किंतु गृहकलह के बीच संपन्नता भी नीरस और कई बार तो असह्य भी बन जाती है। सर्वविदित है कि हत्याओं और आत्म हत्याओं में अधिकांश का कारण पारिवारिक विद्रूपता होती है। विक्षिप्तों और सनकियों की मानसिक दुर्दशा के कारण भी प्रायः पारिवारिक असंतोष ही रहते हैं। रुग्णता में आहार-विहार को दोष दिया जाता है कि ये विकृतियाँ, विसंगतियाँ प्रायः पारिवारिक ढर्रे में घुली रहती हैं और उसके सदस्यों पर अनायास ही लदती रहती हैं। घर की रसोई व्यवस्था में यदि दूरदर्शिता का और विनोद पद्धति में शालीनता का तथा कार्य निर्धारण में सुव्यवस्था का समावेश हो तो उसमें रहने वालों का आहार-विहार के व्यतिक्रम का कदाचित ही दोषी बनना पड़े।

सामाजिक कुरीतियाँ लगती तो ऐसी हैं मानो वे बाहर से आ टपकी हैं और उन्हें विवशता पूर्वक वहन करना पड़ रहा है। पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। घर परिवार के लोग ही कुछ मूढ़ मान्यताओं से जकड़े होते हैं और दुराग्रह पूर्वक उन रुढ़ियों को छाती से चिपकाए रहते हैं, जिन्हें विज्ञ समाज में उपहास माना जाता है। कहने को तो हर बात में समाज का दबाव कहकर अपने को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की जा सकती है। किंतु सचाई यह है कि समाज के किसी सभ्य सदस्य को घरेलू मामलों में दखल देने का न तो समय है और न उत्साह। कोई चाहे इस प्रथा को माने या न माने, बाहरी व्यक्तियों को उसमें कोई खास दिलचस्पी नहीं हो सकती। उथली चर्चा तो सड़क पर होने वाले बंदर के तमाशे की भी होती रहती है।

कुप्रथाओं को अपनाने या छोड़ने के लिए हर परिवार पूर्णतया स्वतंत्र है। दुराग्रही अपनी ही मूढ़मान्यताओं को सामाजिक कुप्रथा कहते हैं और उन्हें करते हुए परंपराओं को दोष देते रहते हैं यह आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। घर का वातावरण दूरदर्शिता अपनाने और विवेक का आश्रय लेने का हो तो आज के विसंगठित समाज में इतनी सामर्थ्य है ही नहीं जो किसी को इस या उस प्रकार का प्रचलन अपनाने के लिए विवश कर सके।

अनैतिकताओं के लिए मनुष्य की निजी लिप्साएँ और कुत्साएँ भी बहुत हद तक जिम्मेदार होती हैं और प्रचलित प्रवाहों का भी असर पड़ता है। किन्तु यदि परिजन उनका समर्थन न करें, असहयोग एवं विरोध का रुख रखें तो निश्चय ही वह आवेश हलका पड़ता जाएगा। एक महिला यदि अपने पति की अनुपयुक्त कमाई से खरीदे बहुमूल्य जेवर, कपड़े पहनने से इनकार कर दे, मिष्ठान्न पकवान न खाये और अपने परिश्रम के बदले रूखा सूखा खाए और फटा टूटा पहनकर काम चलाने लगे तो इतने भर से अनीति की कमाई का घर में प्रवेश बहुत हद तक रुक सकता है। छोटे बच्चे यदि ऐसी दशा में जेब खर्च लेना बंद कर दे और मेहनत मजदूरी करके न्याय अन्न खाने की आकांक्षा व्यक्त करें तो उपार्जनकर्त्ता को अपनी रीति-नीति के संबंध में परिवर्तन करने के लिए अपने आप विवश होना पड़ सकता है।

अनगढ़, अशिष्ट, आलसी, दुर्व्यसनी, भीरु, दुराग्रही, दुर्गुणी प्रकृति के मनुष्य ही हर क्षेत्र में असफल रहते हैं। अपंग, असमर्थ रहते हुए भी सद्गुणी सम्मान पाते और स्नेहभाजन बनकर रहते हैं। वफादारी स्वामिभक्ति जैसे सद्गुणों से मन मोह लेने वाले कुत्ते तक प्राणप्रिय होकर रहते हैं फिर कोई कारण नहीं कि मंद बुद्धि, दुर्बलकाय या कुरूपता जैसे कारणों से मनुष्य को उपेक्षित, तिरस्कृत एवं पिछड़ी हेय स्थिति में समय गुजारना पड़े। कुसंस्कारिता ही मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है जिसके कारण पग-पग पर ठोकर खानी और हर दिशा में निराशा असफलता देखनी पड़ती है। यह अभिशाप विशुद्ध रूप से पारिवारिक अनुदान है। अनगढ़ व्यक्तियों

के कुकरमुत्ते कुसंस्कारी परिवारों के कूड़े कचरे में ही पैदा होते देखे गए हैं। अपवाद तो हर क्षेत्र में जब तब उत्पन्न होते रहते हैं।

अनीति, दुष्टता और कुमार्ग गामिता की प्रवृत्तियाँ असंस्कृत परिवार में ही उत्पन्न होती और प्रोत्साहन पाती हैं। यदि परिवार के वातावरण को सुधारा और परिष्कृत किया जा सके तो उसमें एक से एक श्रेष्ठ नर रत्न उत्पन्न हो सकते हैं। सुसंस्कृत व्यक्तित्व ऐसे ही परिवारों में उत्पन्न होते हैं, जहाँ का वातावरण सुसंस्कारिता से भरा हुआ हो। कोई एक अपवाद भले ही निकल आए परंतु अपवादों को नियम मानकर नहीं चला जा सकता। सामान्यतया होता यही है कि सुसंस्कृत परिवारों में ही सुसंस्कारी व्यक्तित्व जन्मते हैं उसी प्रकार असंस्कृत या कुसंस्कारी वातावरण जहाँ व्याप्त हो, उन परिवारों में उसी स्तर के व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। इसलिए परिवारों में यदि उत्कृष्टता का वातावरण बनाया जा सके, ऐसी परंपराएँ डाली जाएँ जिनमें श्रेष्ठ आचरण की प्रेरणा मिले तो समाज का अभिनव कायाकल्प होते देर न लगेगी।

❐ ❐

श्रेष्ठतम और सहज समाज सेवा

इसे यों भी कहा जा सकता है कि सीमित साधनों और सीमित सामर्थ्यों के बल पर विशाल मानव समाज की सेवा के लिए कुछ करने का जिनमें उत्साह हो, उनके लिए परिवार में उत्कृष्टता का वातावरण बनाने के लिए प्रयास करना एक सहज और सरल साथ ही श्रेष्ठतम सुगम उपाय है। व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण के दोनों महान प्रयोजन परिवार निर्माण की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के साथ जुड़े हुए हैं। इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाए उतना ही उत्तम है। विश्व कल्याण एवं मानवी उत्कर्ष के लिए यों कितने ही छोटे-बड़े सेवा कार्य किये जा सकते हैं पर निकटतम क्षेत्र में अनवरत क्रम से जो सेवा साधना की जा सकती है वह परिवार निर्माण के रूप में ही संभव है। ऐसे लोग जो सेवा स्वीकार करने और अनुरोध पर ध्यान देने के लिए सरलतापूर्वक सहमत हो सकते हैं वे अपने घर परिवार के लोगों से बेहतर कदाचित ही कहीं मिल सकें। उन पर आत्मीयता का दबाव रहता है। असहयोग एवं प्रताड़ना का भय भी। निरंतर साथ रहने के कारण उन्हें समय-समय पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गलतियों को सुधारने एवं सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए बिना विशेष कठिनाई के सहमत किया जा सकता है। अन्य लोगों को सुधारने का प्रयत्न करने में इतना अवसर नहीं मिल सकता, न उन पर कुछ दबाव ही रहता है। अस्तु सुधार परिष्कार की सेवा साधना के लिए सरलतम क्षेत्र ढूँढ़ना हो तो वह परिवार के अतिरिक्त कदाचित ही और कहीं मिल सके।

अन्य लोगों के बिगाड़ सुधार का भला-बुरा परिणाम उन्हीं के संपर्क क्षेत्र में विशेष रूप से होता है। यों प्रकारांतर से सारा मानवी समाज ही एक सूत्र में बँधा है और एक के कृत्य एवं स्तर अन्यान्यों को भी किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं, फिर भी सीधा

संबंध उन्हीं से रहता है जो एक दूसरे के साथ अधिक घनिष्ठता पूर्वक जुड़े हैं। परिवार के लोगों के साथ सहज घनिष्ठता होती है। फलतः एक ही हलचलों एवं परिस्थितियों से उस समुदाय के अन्य लोग भी प्रभावित होते हैं। घर का एक व्यक्ति असामान्य स्तर का बनने लगे तो उसकी प्रक्रिया अन्य साथियों पर भी होती है। स्वयं सज्जन रहते हुए भी परिवार के लोगों की दुर्जनता उद्विग्न करके रख देती है। घर का एक व्यक्ति बागी होता है तो अन्य लोगों की नींद हराम हो सकती है। एक उठता है तो अन्यों को भी उसके सहारे उठने का अवसर मिलता है। शरीर का एक अंग पीड़ित हो तो अन्य अंगों की सहज गतिविधियाँ लड़खड़ाने लगती हैं। यही बात परिवार के संबंध में भी है। समस्त कुटुंबी एक दूसरे की स्थिति से प्रभावित होते हैं। ऐसी दशा में निजी स्वार्थ को देखना हो तो भी वह परिवार से कम की परिधि में नहीं सधता।

ऐसी सेवा जो तत्काल और प्रत्यक्ष ही अपना सत्परिणाम प्रस्तुत करे, परिवार को सुसंस्कृत बनाने के रूप में ही हो सकती है। समृद्ध एवं समुन्नत बनाने के लिए साधनों की आवश्यकता है साथ ही परिस्थितियों की अनुकूलता भी चाहिए। यह सर्वथा अपने ही हाथ में नहीं होता। सुविधा साधन जुटाने के लिए धन चाहिए। वह अभीष्ट मात्रा में मिल ही जाएगा, इसका कोई भरोसा नहीं। फिर धन होने पर भी परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती चली जाएँ तो संपन्नता भी काम नहीं आती। विग्रहों से उत्पन्न अस्त-व्यस्तता को संभालना ही उतना कठिन पड़ जाता है कि संपन्नता से लाभान्वित होने का अवसर भी हाथ नहीं लगता। कितने ही धनी मानी, स्वस्थ समर्थ-निर्धन से भी गई बीती मनःस्थिति और परिस्थिति में समय काटते देखे जाते हैं। प्रतिकूलताओं का दौर चल पड़े तो धन, संपत्ति के आधार पर अपने को, अपने परिवार को सुखी बनाने की इच्छा एक कोने में धरी ही रह जाती है। ऐसा न हो तो भी यह निश्चित है कि धन का, साधनों का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब उसका उपयोग करने वाले सुसंस्कारी हों। अन्यथा उपलब्धियाँ नशे की तरह उन्माद उत्पन्न करती और विष की तरह विनाश रचती देखी गई हैं। ऐसे भाग्यशाली

कम ही होते हैं जो संपदा की विपुलता और उसके सहारे सुखद परिणति का दुहरा लाभ प्राप्त कर सकें। संपन्नता के सहारे परिवार को सुखी-समुन्नत बनाने की कामना ही कम लोगों की पूरी होती है।

सरलता इसमें है कि परिवार के वातावरण में सुसंस्कारिता उत्पन्न की जाए। इसका प्रतिफल हाथों हाथ देखने को मिलेगा। निर्धनता इस प्रयास में कोई बाधा नहीं पहुँचाती। गरीबी के कारण सुविधा साधनों में कमी पड़ती है, परंतु कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इतने पर भी शालीनता के निर्वाह में उस कमी के कारण कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता इसी प्रकार परिस्थितियों की विपन्नता सामने आ खड़ी होने पर भी नीति पथ से डगमगाने का कोई कारण नहीं होता। सच तो यह है कि संकटग्रस्त परिवार के लोग एक दूसरे की सेवा सहायता में और भी अधिक सद्भावना और सहकारिता का परिचय देते हैं। मुसीबत के कारण सदाशयता और भी अधिक निखरती है। दूरदर्शिता, साहसिकता जैसे सद्गुणों के परिपक्व होने का अवसर प्रायः विपन्न परिस्थितियों में ही मिलता है।

साधनों से सुविधा तो रहती है और दूसरों को चमत्कृत करने का अवसर भी मिलता है। इतने पर भी वे सुसंस्कारिता के सम्वर्धन में कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते। सच तो यह है कि संपन्नता के कारण उसके उपभोक्ता, आलस्य, प्रमाद, अहंकार एवं अनेकानेक दुर्व्यसनों में ग्रसित होते देखे जाते हैं, जबकि निर्धनता की स्थिति में वैसे उद्धत आचरण के लिए गुंजाइश ही नहीं रहती।

यहाँ संपन्नता-विपन्नता की तुलनात्मक समीक्षा नहीं की जा रही है। मात्र इतना कहा जा रहा है कि परिवार को सुसंस्कृत बनाने की सरलता समझी जाए और यह न सोचा जाय कि इस महान प्रयोजन में निर्धनता बाधक हो सकती है। इसी प्रकार व्यस्तता की बहानेबाजी गढ़ना भी बेकार है। परिवार में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए अलग से समय निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सामान्य क्रिया-कलापों के बीच ही वह प्रशिक्षण सहज स्वभाव चलता रहता है। महान माताओं ने अपनी संतानों को विश्व के ऐतिहासिक महामानवों की

पंक्ति में बैठ सकने योग्य बनाया तो इसके लिए उन्होंने हर दिन कोई नियमित कक्षाएँ नहीं चलाईं और न किसी अतिरिक्त प्रयोगशाला में ढलने भेजा। सामान्य दिनचर्या के बीच ही ऐसे सुसंस्कार देती चली गईं कि समय आने पर इन सद्गुणों ने चमत्कार दिखाया और उन सुसंस्कृतों को उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाया। वे माताएँ स्वयं श्रेयाधिकारी बनीं और उनकी संतति ने उत्तराधिकार में उच्चस्तरीय अनुदान पाया।

परिवार निर्माण के लिए क्या साधन जुटाने होंगे यह पूछने की आवश्यकता नहीं। उसमें केवल महत्त्व समझने और ध्यान देने भर की आवश्यकता है। इतना बन पड़े तो प्रयास सहज ही चल पड़ेंगे। आरंभ में ढर्रा बदलने भर की कठिनाई पड़ेगी। अभ्यस्त ढर्रा, स्वभाव का अंग बन जाता है। कितनी ही दुष्प्रवृत्तियाँ आदतों में सम्मिलित हो जाती हैं। उसकी हानियाँ समझते हुए भी भारी अड़चन यही रहती है कि आदत अपने आप छूटती नहीं। छुड़ाने के लिए जिस साहस की आवश्यकता है वह होता नहीं। फलतः अनुपयुक्त रीति-नीति के अभ्यस्त दुःख सहते और सिर धुनते रहते हैं। अपना बचाव करने की मनोवैज्ञानिक कमजोरी विपन्न परिस्थितियों का दोष किसी दूसरे के मत्थे मढ़ने की विडंबना रचती रहती है। उससे भी कुछ बनता नहीं। आत्म प्रवंचना से उद्विग्नता को किसी सीमा तक हलकी भले ही कर दिया जाए प्रयोजन तनिक भी सिद्ध नहीं होता।

परिवार निर्माण की महत्ता और उपयोगिता जिनकी समझ में आ जाए और जो सचमुच ही इस दिशा में कुछ करना चाहते हों उन्हें एक ही साहस जुटाना पड़ेगा कि घर के प्रचलित चिंतन और क्रियाकलाप में उपयोगी सुधार परिवर्तन करने के लिए कटिबद्ध हुआ जाए। इसके लिए अन्य सदस्यों से परामर्श किया जाय और उनका सहयोग संपादित किया जाए। जो सहयोग देने के लिए तत्पर दिखाई दें, उन्हें साथ लेकर परिवार निर्माण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाए, यह प्रक्रिया आरंभ करते ही आत्म निर्माण और समाज निर्माण की साधना भी उसके साथ ही आरंभ हो जाती है। समाज निर्माण के लिए फिर अतिरिक्त रूप से कुछ करना न बन पड़े तो भी परिवार

निर्माण के रूप में यह एक महत्त्वपूर्ण समाज सेवा हो सकती है। क्योंकि इन प्रयासों के परिणामस्वरूप समाज में श्रेष्ठ और सुसंस्कारी व्यक्तित्व उत्पन्न होते हैं। ये व्यक्तित्व परिवार की खदान से ही निकलते हैं। इन व्यक्तित्वों के निर्माण में परिवार के उन जागरूक सदस्यों के योगदान को नापा नहीं जा सकता, जो अपने घर में इस तरह का वातावरण बनाने में लगे हुए हैं, जिसमें कि उत्कृष्ट द्वार व्यवहार की प्रेरणा मिली।

कहा जा चुका है कि शरीर, बल, बुद्धि आदि की दृष्टि से मनुष्य और अन्य प्राणियों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अंतर है तो व्यक्तित्व की पूँजी का। जानवरों के पास व्यक्तित्व की यह पूँजी नहीं होती और मनुष्य के पास होती है। उसे उत्कृष्ट, उच्च और संस्कारवान बनाया जाना चाहिए। न केवल अपने व्यक्तित्व को वरन् परिवार के अन्य सदस्यों का व्यक्तित्व भी ऊँचा उठाने के लिए विचारशील व्यक्तियों को प्रयत्न करना चाहिए। यदि इतना भी किया जा सके तो यह एक महत्त्वपूर्ण समाज सेवा हो सकती है। इसके लिए कहीं कोई लंबा चौड़ा कार्य क्षेत्र भी नहीं तलाशना पड़ेगा। वह क्षेत्र अपने आस-पास के वातावरण में ही मिल जाता है।

❒ ❒

परिवार निर्माण एक अनिवार्य उपयोगी प्रयास

परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाना प्रत्येक विचारशील, जागरूक और विवेकवान व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इस संगठन में रहने और उसका लाभ उठाने का ही दृष्टिकोण यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना ले तो परिवार संस्था का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। यदि एक साथ रहने का नाम ही परिवार है तो लोग धर्मशालाओं, होटलों और रेल-मोटरों में भी एक साथ रहते हैं। उतने मात्र से ही इन स्थानों पर रहने वाले लोग परिवार के सदस्य नहीं बन जाते। परिवार एक साथ रहने वाले व्यक्तियों का नाम नहीं है। उसमें रहने वाले सदस्य एक-दूसरे के प्रति घनिष्ठ आत्मीयता के सूत्र में बँधे रहते हैं। साथ रहने, एक चौके में खाने और एक-दूसरे से बोलचाल, बातचीत, प्रेम-व्यवहार से संबद्ध रहने के अतिरिक्त भी स्वजन आपस में एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों से बँधे रहते हैं। उन कर्त्तव्यों की पूर्ति करते चलना परिवार में रहने की, परिवारी जन कहलाने की अनिवार्य शर्त है। नासमझ, अबोध और छोटे बच्चों की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन की आवश्यकता, अनिवार्यता परिवार के बड़े सदस्यों के लिए अधिक है। छोटे बच्चों को तो कर्त्तव्य और दायित्वों की भाषा ही नहीं समझ पड़ती फिर वे उन्हें पूरा कहाँ से कर सकेंगे ? उन्हें कर्त्तव्य और दायित्व समझाना आगे की बात है। पहले तो यह आवश्यक है कि बड़े लोग। स्वंय कर्त्तव्यपरायण तथा परिवार के प्रति उत्तरदायी बनें।

यह उत्तरदायित्व परिवार के लोगों को संस्कारवान बनाने, उन्हें आदर्श और उत्कृष्ट व्यक्तित्व संपन्न बनाने के लिए किए गए जागरूक प्रयासों के रूप में ही पूरा किया जा सकता है। इन प्रयासों को कुशलता और तत्परता पूर्वक संपन्न किया जाए तो न केवल परिवार उत्कृष्ट व्यक्तित्वों को उत्पन्न करने में समर्थ हो सके वरन् उन प्रयासों

के द्वारा अगणित मानवीय समस्याओं का समाधान भी परिवार की परिधि में रहकर ही संभव हो सकता है। सामाजिक कुरीतियाँ और समस्याएँ कोई आसमान से नहीं टपकतीं, वे समाज की इकाई व्यक्तियों की प्रवृत्ति से ही जन्मती हैं। व्यक्ति यदि असंस्कृत, अदूरदर्शी और विवेकवान होंगे तो उनकी प्रवृत्तियाँ, गतिविधियाँ और क्रियाकलाप भी उसी स्तर के होंगे। व्यक्तियों की गतिविधियाँ और उनके क्रिया-कलाप ही कई तरह की सामाजिक समस्याएँ खड़ी करते हैं। यदि उनके दृष्टिकोण और रीति-नीति में कोई परिष्कार किया जाए तो उन समस्याओं का जड़-मूल से उच्छेदन किया जा सकता है।

यही नहीं बहुत-सी ऐसी समस्याएँ भी परिवार के माध्यम से हल की जा सकती हैं जिनका व्यक्ति की रीति-नीति से प्रत्यक्षतः कोई संबंध नहीं है। यद्यपि सभी समस्याएँ व्यक्तियों के अपने दृष्टिकोण और रीति-नीतियों, क्रिया-कलापों से ही उत्पन्न होती हैं फिर भी कुछ का स्वरूप सीधे उससे संबंधित नहीं होता। उदाहरण के लिए अशिक्षा को ही लें। प्रत्यक्षतः इसका कारण परिस्थितियाँ और साधनों का अभाव लगता है परंतु वास्तव में इसका कारण रुचि का अभाव और शिक्षा का महत्त्व न समझना है। कारण जो भी हो अशिक्षा अपने देश की एक बहुत बड़ी समस्या है और लगभग तीन चौथाई जनता अशिक्षित है। इन सभी लोगों को शिक्षित बनाना बड़ा काम लग सकता है, बड़ा काम है भी सही किंतु इतनी बड़ी समस्या का समाधान निरक्षरता का उन्मूलन घर-पड़ौस के शिक्षित लोग ही थोड़ा-थोड़ा समय देकर सहज ही कर सकते हैं, जबकि सरकारी तंत्र देश की तीन चौथाई जनता को साक्षर बनाने के लिए तंत्र खड़ा करने में प्रायः असफल ही रहेगा। गरीबी उन्मूलन में कुटीर उद्योगों को प्रथम उपाय माना जा सकता है। यह प्रचलन ऊपर से नहीं थोपा जा सकेगा। घर के लोग आवश्यकता अनुभव करेंगे तो उसके साधन उसी प्रकार जुटा लेंगे जैसे विवाह-शादियों में खर्च करने के लिए पैसा कहीं से भी किसी भी प्रकार जुटा लेते हैं। स्वास्थ्य को बनाने और बिगाड़ने से भोजन संबंध ढर्रे तथा स्वच्छता, दिनचर्या की प्रमुख भूमिका रहती है, उसे सुधारने में ही आरोग्य का संरक्षण हो सकेगा,

गली-गली अस्पताल बनाने और घर-घर डॉक्टर पहुँचाने से भी जो कार्य नहीं हो सकता, वह आहार-विहार संबंधी पारिवारिक ढर्रा बदलने से हो सकता है।

जनसंख्या नियंत्रण परिवार नियोजन की समस्या अत्यधिक विकट है। यह राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। यह कार्य सीधा घर की मान्यताओं पर निर्भर है। परिवार के हर सदस्य की इस संदर्भ में जागरूकता रहे और प्रजनन को अशुभ माना जाने लगे तो यह कार्य सहज ही हो सकता है, जो सरकारी महकमे की दौड़-धूप नहीं कर पा रही है। चरित्र गठन और व्यक्तित्व-निर्माण का कार्य अत्यधिक महत्त्व का काम है। समर्थता, समृद्धि और प्रगति के सभी प्रयोजन इसी रथ चक्र के आधार पर गतिशील हो सकते हैं, यह कठिन कार्य परिवार संस्था के अतिरिक्त और किसी के बल-बूते का नहीं है। स्कूलों में कुछ भी क्यों न पढ़ाया जाता रहे, घर का वातावरण ही व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव को गढ़ने ढालने में सफल होगा। जो कार्य नीति, सदाचार और धर्म अध्यात्म का विशालकाय तंत्र चिरकाल से चल रही धूम-धाम और ऊहापोह के सहारे भी कर नहीं पाया उसे परिवारों का सुधारा हुआ वातावरण देखते-देखते संपन्न कर सकता है।

नागरिकता और सामाजिकता की कारगर शिक्षा देना और शालीनता को स्वभाव का अंग बता देना, न प्रवचनों के हाथ में है और न साहित्य इस दिशा में बहुत आगे तक जा सकता है। इन प्रचार तंत्रों से दिशा-दर्शन भर हो सकता है। सत्प्रवृत्तियों को स्वभाव का अंग बनाना उपचारों से नहीं अंतरंग के मर्म-स्थल को प्रभावित करने वाली एवं दैनिक जीवन में कार्यान्वित होने वाली परिपाटी से ही संभव हो सकता है। यह महान कार्य यदि कभी कोई कर सकता है तो वह एक ही तंत्र होगा—परिवार का परिष्कृत वातावरण।

सामाजिक कुरीतियाँ अनुपयुक्त, प्रथा-परंपराएँ, मूढ़ मान्यताएँ और रूढ़ियाँ, कितनी कष्ट कर और कितनी खर्चीली विभीषिकाएँ रचती रहती हैं, उसे हम सब आये दिन अनुभव करते हैं। समाज सुधार के नारे लगाए जाते और आंदोलन किए जाते हैं, पर देखा गया है कि

स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं होता। विवाह-शादियों के प्रचलन को ही लें तो उसमें बाल-विवाह से लेकर दान-दहेज, धूम-धाम और उपजातियों में ही ढूँढ-खोज के कारण कितनी जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और दूरगामी दुष्परिणाम प्रस्तुत करती हैं, इसे सभी जानते हैं, बदलने हटाने की बात भी सोचते हैं पर घर-परिवार का भीतरी वातावरण इतना जड़ दुराग्रह, अपनाए बैठा होता है कि बुद्धिमानी एक कोने पर बैठी रहती है और रूढ़ियाँ क्रियान्वित होती रहती हैं। सुधार अभीष्ट हो तो पत्ते तोड़ने से नहीं जड़ काटने से ही काम चलेगा।

नारी को पद दलित बनाए रखने और उसकी प्रगति में पग-पग पर अवरोध खड़े करने में उसका पति ही कारण नहीं होता, सारा परिवार उस अनीति को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाए रहता है। फलतः प्रगतिशीलता का समर्थक होते हुए भी पति कुछ कर नहीं पाता। लोक-लाज से उसे घर वालों का दबाव सहना पड़ता है और आदर्शवादी मान्यताओं को मन ही मन में मसोसे रहना पड़ता है। भावी पीढ़ी का निर्माण परिवारों में सुसंस्कारिता उत्पन्न होने से ही संभव हो सकता है, इस तथ्य को बहुत दिनों से समझा-समझाया जाता रहा है। इस संदर्भ में एक कड़ी और भी जुड़नी चाहिए कि नारी उत्थान का कार्य भी पारिवारिक वातावरण में परिवर्तन करने से ही संभव हो सकता है। पुत्र और पुत्री में भेद, पर्दा प्रथा, शिक्षा की उपेक्षा, विवाह की जल्दी, प्रगति प्रयासों का विरोध, असहयोग, अस्त-व्यस्त ढर्रे में पूरा समय नष्ट होते रहना और प्रगति प्रयासों के लिए समय न मिलना जैसे अवरोध ही नारी की प्रगति में बाधक और अवनति के निमित्त हैं। इन अनाचारों का परिपोषण एक व्यक्ति नहीं, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पूरा पारिवारिक वातावरण ही करता है। नारी उत्थान की समस्या का हल, यदि वस्तुतः करना हो तो उसके लिए प्रचलित ढर्रे को बदलना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

खाद्य संकट जैसी कितनी ही समस्याएँ देश को हैरान करती रहती हैं, घरों में शाक-वाटिका लगाने तथा अन्न का उपयोग कम करके शाकों को उसका स्थानापन्न बनाया जा सके, पकाने की विधि

अन्न की सुरक्षा में जूठन छोड़ने तथा अधिक बना डालने जैसी उपेक्षाओं में यदि सतर्कता बरती जाने लगे तो इतने भर से अन्न की इतनी मात्रा बच सकती है कि उतने से ही विदेशों से अन्न मँगाने जैसी कठिनाई का हल निकल सके। गौरक्षा के लिए कितने ही आंदोलन चलते हैं, पर आत्यांतिक समाधान एक ही है कि मात्र गाय का दूध ही प्रयुक्त किया जाए। हर परिवार की यही माँग हो तो गौ पालन का व्यवसाय देश का प्रमुख उद्योग बन जाएगा और उससे न केवल धर्मभावना एवं स्वास्थ्य रक्षा का सवाल हल होगा, वरन् उपयोगी बैल मिलने से लेकर असंख्यों की बेकारी दूर होने का एक नया मार्ग भी मिलेगा।

प्राचीन काल में हर घर के पीछे, एक व्यक्ति लोक सेवा के लिए समर्पित होता था। घर के अन्य लोग उसके पारिवारिक उत्तरदायित्वों को अपने कंधों पर वहन करते थे। लोक मंगल के रचनात्मक कार्यों में भावभरी जनशक्ति चाहिए। इसे नौकरी देकर इन दिनों खरीदा जाता है। यह खरीद खर्चीली भी रहती है और निकम्मी भी। यदि हर परिवार अपने में से एक को लोक समर्पित कर सके तो बिना अतिरिक्त अर्थव्यवस्था जुटाए, बिना भर्ती किये इतने समाज सेवी मिल सकते हैं कि उलझी हुई असंख्य समस्याओं का समाधान उनके द्वारा सहज संभव हो सके। वानप्रस्थ परंपरा ने पुरातन युग को सतयुग में बदला था। संयासी लोक जागरण का कार्य करते थे, कितने ही ब्रह्मचारी विवाह की उपेक्षा करके सीधे समाज सेवा के महान कार्य में जुट जाते थे, ये ही थीं वे महान परंपराएँ जिनने इस देश को देवभूमि बनाया और यहाँ के लोगों ने संसार के कौने-कौने में जाकर सभ्यता का पाठ पढ़ाया। पारिवारिक संकीर्णता का दबाव इन दिनों इतना अधिक है कि कोई परमार्थ परायण होने की बात सोचे या कदम उठाए तो उसे परिवार से लेकर मित्र-संबंधियों तक के भारी विरोध का सामना करना पड़ता है। परिस्थिति को उलटा जा सके, परमार्थ को प्रश्रय-प्रोत्साहन मिलने लगे तो प्राचीन काल की तरह फिर असंख्य लोक सेवी मिल सकते हैं। वानप्रस्थ और संन्यास की आवश्यकता घर भर के लोग अनुभव करने लगें तो समझना चाहिए

कि व्यक्ति और समाज का कायाकल्प प्रस्तुत करने वाला सतयुग स्वर्ग से उतर कर धरती पर आने के लिए तैयार हो गया।

कितने ही दुर्व्यसन और दुर्गुण मनुष्य समाज को खोखला करते हैं। सिगरेट, शराब आदि का प्रचलन परिवार में विरोधी वातावरण न रहने से ही पनपता है। सिख परिवार में तम्बाकू और जैन परिवार में माँसाहार का प्रचलन प्रायः नहीं ही पाया जाता। इसमें व्यक्ति विशेष को श्रेय नहीं वरन् पूरे परिवार का दबाव काम करता है। नशेबाजी जैसी दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए पारिवारिक वातावरण का सहयोग मिलना आवश्यक है।

अनेक रचनात्मक कार्यों के लिए श्रम शक्ति और धन शक्ति की कमी पड़ती रहती है। इसके लिए सरकार भारी टैक्स लगाती है और संस्थाएँ चंदा एकत्रित करती हैं। यदि समर्थ व्यक्ति एक घंटा समय और दस पैसा नित्य देने लगे और यह प्रथा आवश्यक कृत्यों की शृंखला में जुड़ सके तो किसी असुविधा का सामना किए प्रचुर परिणाम में श्रम और धन अनायास ही उपलब्ध हो सकता है और उतने से ही नव सृजन के अनेकानेक प्रयोजनों की पूर्ति सरलतापूर्वक होती रह सकती है। साठ करोड़ भारतीयों में से बीस करोड़ समर्थ माने जा सकते हैं। इतने लोगों का एक घंटा मिलने से बीस करोड़ घंटों का श्रमदान उपलब्ध हो सकता है। इतने भर से नव सृजन का पर्वत जैसा भारी काम उँगलियों पर उठ सकता है। बीस करोड़ समर्थ दस पैसा नित्य दें तो वह राशि दो करोड़ प्रति दिन होती है। दो करोड़ प्रति दिन अर्थात् ७२० करोड़ वार्षिक। इतनी बड़ी राशि में इन रचनात्मक कार्यों के ढाँचे सहज ही खड़े किए जा सकते हैं, जिनके बिना आज आदर्शवादी प्रगति में भारी अड़चन खड़ी हो रही है। साहित्य और कला को नव सृजन में लगाने की आवश्यकता हर कोई अनुभव करता है, सत्साहित्य का सृजन एक आवश्यक कार्य है। इन दिनों का प्रधान मनोरंजन और प्रभावी माध्यम सिनेमा है। दोनों के लिए पूँजी मिल सके तो फैले हुए कूड़े-करकट को बुहार फेंकने और उसके स्थान पर अभिनव को स्थानापन्न बनाना सहज सुलभ हो सकता है। एक वर्ष के ७२० करोड़ सत्साहित्य के लिए,

दूसरे वर्ष के फिल्म के लिए, तीसरे वर्ष के चल पुस्तकालयों के लिए, चौथे वर्ष के साक्षरता के लिए, पाँचवें वर्ष के अवाँछनीयताओं के उन्मूलन के लिए लगाए जा सकें तो यह पंचवर्षीय योजना अपने देश का समग्र कायाकल्प करके रख सकती है। इतने भर से भौतिक परिस्थितियों और मनःस्थितियों में जमीन आसमान जैसा अंतर प्रस्तुत किया जा सकता है। न सरकार पर बोझ पड़ेगा और न दानियों का द्वार खटखटाना पड़ेगा। परिवार में जिस प्रकार अनेक प्रथा-परंपराएँ भी प्रचुर धन खर्च कराती और समय बर्बाद कराती रहती हैं, उसी प्रकार एक घंटा और दस पैसा नित्य परमार्थ प्रयोजनों के लिए निकालने जैसे छोटे अनुदान को भी उसी में सम्मिलित किया जा सके तो इतने नगण्य से अंशदान का सम्मिलित योगदान इतना बड़ा हो सकता है कि प्रचुर धन-शक्ति और जनशक्ति के सहारे नया संसार बनाकर खड़ा कर देने जैसा चमत्कार किया जा सके।

अनैतिकताएँ और अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ रोकने के लिए पुलिस, कचहरी, जेल, कानून आदि का खर्चीला ढाँचा चल रहा है, इतने पर भी पतनोन्मुख प्रवाह में कोई कमी आती नहीं दीखती। दंड से बच निकलने की प्रचुरता इतनी अधिक बढ़ गई है कि अपराधों की रोकथाम का प्रयोजन पूरा नहीं दीखता। यह अंधकार भरे भविष्य का लक्षण है। रोकथाम की बात यदि कभी सफल हुई तो उसमें पारिवारिक शालीनता ही प्रधान भूमिका संपन्न करेगी। छोटे रूप में अनीति की शिक्षा वहीं से मिलती है। अपराधों को सहन करने और समर्थन देने का प्रश्रय भी वहीं से मिलता है। छोटे रूप में पलने वाली आदतें बड़ी होने पर कालरज्जु जैसी सर्पिणी बनतीं और शालीनता को डसकर समाप्त करती हैं। यदि परिवार में अनीति को प्रश्रय न देने का प्रचलन हो, उसको समर्थन सहयोग न मिले तो अधिकांश दुष्प्रवृत्तियाँ पनपने का अवसर ही नहीं पा सकतीं।

व्यक्तिगत दोष-दुर्गुणों से लेकर सामाजिक कुरीतियों और अनैतिक, अवांछनीय, भ्रष्ट प्रवृत्तियों तक जितनी भी समस्याएँ वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त हैं, उनका हल परिवार में खोजा जा सकता है।

विश्व में अनेकानेक स्तर की समस्याएँ, विपत्तियाँ एवं विभीषिकाएँ बिखरी पड़ी हैं, ऐसी विकट जो सुलझाए सुलझती नहीं। इतने बुद्धिमान और इतने सुसम्पन्न मानव समाज को निरंतर व्यथित, उद्विग्न, आशंकित बनाए रहने वाली इन विपन्नताओं की उत्पत्ति आखिर होती कहाँ से है ? इसका पता लगाने पर प्रतीत होता है कि चिंतन और चरित्र की दृष्टि से सड़े-गले परिवार अपनी कीचड़ में से विषैले कृमि-कीटक उत्पन्न करते हैं, इन विषाणुओं की सेना लोक मानस को जर्जर बनाकर रख देती है। समस्त विकृतियों का उद्‌गम केन्द्र यही है। यदि परिवारों में सुसंस्कारिता की परिस्थितियाँ बनी रहें तो इस नंदन वन में कल्प वृक्ष फलते और परिजात फूलते दिखाई देंगे। स्वर्गीय वातावरण बनाने की यह पृष्ठभूमि है।

इस संदर्भ में परिवार के प्रति अपना दृष्टिकोण भी स्पष्ट कर लेना चाहिए। परिवार का अर्थ उन लोगों तक ही सीमित नहीं समझा जाना चाहिए जो एक चूल्हे पर पकाते-खाते और एक घरोंदे में रहते हैं। पारिवारिक परिधि में हर स्तर के व्यक्ति को सम्मिलित किया जा सकता है। विवाहित, अविवाहित की इसमें समान रूप से गणना हो सकती है। प्रचलित मान्यता के अनुसार अपनी स्त्री और उसके पेट से उत्पन्न हुए बाल-बच्चे परिवार गिने जाते हैं, बहुत हुआ तो माता के पेट से उत्पन्न हुए भाई-बहिन भी इस परिवार में समझे जा सकते हैं। पाश्चात्य देशों में स्त्री-पुरुष ही परिवार है, समर्थ होते ही बच्चे अपनी गृहस्थी आप बसाते हैं, अभिभावकों के साथ किसी कर्त्तव्य उत्तरदायित्व के बंधन में बँधे नहीं रह जाते।

भारतीय पारिवारिकता उससे भिन्न है। उसमें संयुक्त कुटुम्ब की परिपाटी है। कई पीढ़ियों के लोग एक ही घर-परिवार में संयुक्त रूप से ही रहते, एक ही चूल्हे पर पकाते-खाते और कृषि आदि एक ही व्यवसाय में संलग्न रहकर गुजारा करते हैं। अपने ही अंशजों का उत्तरदायित्व सँभालने जैसी संकीर्णता उनमें नहीं होती। विधवाएँ निराश्रिताएँ और दूर रिश्ते की महिलाएँ इसी परिवार में आश्रय पातीं और शांतिपूर्वक निर्वाह करती देखी जाती हैं। यही भारतीय आदर्श है। संयुक्त कुटुंब प्रणाली के अंतर्गत अधिक लोगों के साथ रहने और

निर्वाह एवं विकास के लिए सामुदायिक रीति-नीति अपनाने की प्रयोगशाला ही परिवार है। उसका आधार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी।

मिल-जुल कर रहने, योग्यतानुसार कमाने, आवश्यकतानुसार खर्च करने की आदर्शवादिता परिवार का मेरुदण्ड है। अध्यात्म की दृष्टि से अधिक लोगों का आत्मीयता के बंधनों में बँधना सुख-दुःख को मिल-बाँटकर वहन करना, अधिकार को गौण और कर्त्तव्य को प्रमुख मानकर चलना पारिवारिकता है। इसे सहकारी जीवन पद्धति कह सकते हैं। इन दिनों आर्थिक क्षेत्र में सर्वत्र सहकारी प्रयत्नों की उपयोगिता समझी जा रही है और उसे प्रमुखता मिल रही है। देहातों में सहकारी समितियों का विस्तार हो रहा है, औद्योगिक कारखाने लिमिटेड कंपनियों के रूप में चलते हैं।

मानवी प्रकृति में बुद्धि की प्रधानता को कारण समझा जाता है पर वस्तुतः महिमा सहकारिता की है। कुटुम्ब बनाकर रहने और समाज व्यवस्था अपनाने से ही उसने इस स्तर तक पहुँचने में सफलता पाई है जिससे वह सृष्टि का मुकुट मणि समझा जाता है। सहकारी स्वभाव ने उसे पारस्परिक आदान-प्रदान के साधार पर बुद्धिमान, सुयोग्य और समृद्ध बनाया है। भौतिक आत्मिक प्रगति का सारा रहस्य मिल-जुलकर रहने की पद्धति में सन्निहित है उसी को अधिक सुसंयत रूप से छोटी-छोटी इकाइयों में क्रियान्वित करना परिवार है। इसी सत्प्रवृत्ति को जीवनयापन के हर क्षेत्र में विकसित करना पारिवारिकता है। इसी का विकसित रूप समाजवाद एवं साम्यवाद है। अध्यात्म दर्शन भी इसी आस्था पर आधारित है। "वसुधैव कुटुंबकम" का सिद्धांत समस्त मानव समाज को, प्राणिमात्र को आत्मीयता के सूत्र में बाँधता है और संयुक्त रूप से प्रगति करने तथा मिल-बाँटकर खाने की प्रेरणा देता है।

स्त्री के पेट से उत्पन्न हुए बच्चों का भरण-पोषण तो पशु-पक्षियों में भी चलता है। नर-नारी कामुकता के आधार पर घर बसाते व अंडे बच्चों की साज-सँभाल करते हैं। यह प्रकृति प्रेरणा है। परिवार यहाँ से आरंभ भले ही होता है, पर इतने दायरे में सीमित

नहीं रहता। उसकी परिधि अधिकाधिक बड़ी होती जानी चाहिए। यहाँ तक कि विश्व परिवार के आदर्शों का परिपालन करते हुए विराट ब्रह्म के दर्शन करने चाहिए। विरक्त भी एकाकी नहीं रहते उनका आश्रय संप्रदाय परिवार है। कुमार-कुमारी, विधुर-विधवा भी विवाहितों की तरह ही किसी निर्वाह तंत्र के अंग बनकर ही रहते हैं।

विशाल परिवार की दृष्टि को विकसित करना, जीवनयापन की प्रक्रिया में अधिकाधिक लोगों को संयुक्त करना यही पारिवारिकता का तत्त्व दर्शन है जिस पर लोक कल्याण अवलंबित है। यह तो परिवार संस्था के व्यापक और विस्तृत अर्थ की बात हुई। उदार दृष्टि से विचार करने पर तो यह पूरा विश्व ही अपना परिवार दिखाई देने लगेगा। लक्ष्य वही होना चाहिए किंतु परिवार के वर्तमान कलेवर को, प्रचलित स्वरूप को ही देखें तो वही अपने आप में इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि उसी के ऊपर व्यक्ति और समाज का भाग्य भविष्य निर्भर है।

व्यक्ति और समाज का भाग्य भविष्य निर्धारित करने वाली यह संस्था इन दिनों अपने आप में बुरी तरह अस्त-व्यस्त स्थिति में पड़ी है। गंगोत्री का गोमुख अवरुद्ध हो जाए तो भागीरथी की पतित पावनी धारा की उपलब्धियों का आनंद कैसे मिले ? गंगा का अवतरण भागीरथ के प्रयासों से हुआ परंतु उसकी स्वच्छता और गतिशीलता में अवरोध उत्पन्न न होने पाए, यह उन सबका उत्तरदायित्व है जो भागीरथी से लाभ उठाते हैं तथा उसका महत्त्व मानते हैं। आदिम मनुष्य को परिवारी प्रकृति का बनाने और उसे इस महान संस्था की छत्रछाया में फलने-फूलने का अवसर जिन्होंने दिया, वे तत्त्वदर्शी निश्चित रूप से भागीरथ के समतुल्य थे। उन्होंने परिवार संस्था के रूप में विश्व मानव को भौतिक सिद्धियों से हर घड़ी लाभान्वित करने वाली दिव्यगंगा धरती पर बुलाई। अब आप सभी व्यक्तियों का जिन्होंने इस संस्था से लाभ उठाया, यह कर्त्तव्य है कि उसकी पवित्रता और प्रवाहशीलता में जो गतिरोध उत्पन्न हो रहा है उसका निराकरण करें।

इस दिशा में यदि प्रभावशाली कदम उठाए जाएँ तो उससे स्वार्थ भी साधना है और परमार्थ भी। इस दिशा में किए गए प्रयासों का परिणाम भी तत्काल देखने को मिल सकता है। परिवार निर्माण की दिशा में उपयोगी कदम उठाते ही उनका प्रभाव तुरंत उत्पन्न होता है। अर्थ संतुलन, स्नेह, सौहार्द्र, वातावरण में सुसंस्कारिता और सभी के लिए प्रगति के अवसर जैसे लाभ परिवार निर्माण के कदम उठाते ही तुरंत मिल जाते हैं। ये लाभ प्रत्यक्ष मिलते भी दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त दूरदर्शी और परोक्ष लाभ अलग हैं।

स्वभावतः परिजनों को प्रगतिशील, समुन्नत, यशस्वी, समृद्ध एवं सुसंस्कृत होने की आकांक्षा रहती है। यह शुभेच्छाएँ मात्र कल्पना करने या आशीर्वाद देने से पूरी नहीं हो जातीं। इन्हें फलित करने के लिए उस वातावरण को समर्थ बनाना पड़ता है जिसमें पलकर किसी अनगढ़ को सुगढ़, अविकसित को समुन्नत बनने का अवसर मिलता है। जलवायु की अनुकूलता में वृक्ष वनस्पतियाँ विकसित और फलित होती हैं। प्रतिकूलता होने पर बहुमूल्य पौधे भी सूखते दम तोड़ते देखे जाते हैं। यही बात प्राणियों के संबंध में भी है। समर्थ वर्ग के जीव-जंतु भी अनुपयुक्त परिस्थितियों में दुर्बल रुग्ण रहते और अस्तित्व गँवाने लगते हैं। मनुष्य की आत्म-सत्ता महान अवश्य है। किंतु उसको भी साँस लेनी पड़ती है। घुटन भरे घेरे में रहकर उसे अपनी स्वाभाविक चेतना से हाथ धोना पड़ता है। विष खाने से ही नहीं विषाक्त गैस से भी मृत्यु होती है। व्यक्ति के निजी दोष-दुर्गुण प्रगति पथ में जितना अवरोध उत्पन्न करते हैं उससे कम नहीं कुछ अधिक ही बाधा उस वातावरण के कारण उत्पन्न होती है जो परिवार में कुसंस्कारी परिस्थितियों के कारण बना होता है।

कल्पना करना एक बात है योजना बनाना दूसरी। योजना बनाना एक बात है और व्यवस्था करना दूसरी। व्यवस्था करना एक बात है और तत्परता बरतना दूसरी। कुटुम्बियों को सुखी-समृद्ध देखने की कल्पना, शुभेच्छा उचित भी है और स्वाभाविक भी। पर उतने भर से काम कुछ नहीं बनता। कल्पना तो सिंहासनारूढ़ होने या आसमान के तारे तोड़ लाने की भी हो सकती है, पर उसका कोई

आधार ही न बनता हो तो शेखचिल्ली जैसा उपहासास्पद ही बनना पड़ेगा।

छोटे से लेकर बड़े कामों तक की व्यावहारिक योजना बनानी पड़ती है। उसे क्रियान्वित करने में तन्मयता एवं तत्परता नियोजित करनी पड़ती है। आवश्यक साधन जुटाने होते हैं। पतन की दिशा में लुढ़कना हो तो उसके लिए कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पानी को ढलान की दिशा में बहने के लिए कोई विशेष उपक्रम नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार पतन भी बिना किसी परिश्रम के, बिना किसी प्रयास के होने लगता है। पर सदुद्देश्य के लिए सृजनात्मक प्रयास खड़े करने और उन्हें गतिशील रखने में अनवरत् प्रयास की आवश्यकता पड़ती है। पतन पथ पर पानी से लेकर ढेले तक को बहते लुढ़कते देखा जा सकता है। वे जब तक जीवित हैं तब तक बिना किसी प्रेरणा के अधिक गहरे गर्त में गिरने के लिए स्वयमेव बढ़ते रहते हैं।

उत्कर्ष की बात दूसरी है। उसके लिए निरन्तर शक्ति जुटानी पड़ती है। कुएँ से पानी खींचने में हाथ रुकते ही सारा काम जहाँ का तहाँ रुक जाता है। छत पर चढ़ने के लिए जब तक पैर बढ़ेंगे तभी तक प्रगति होगी, रुकते ही सब कुछ ठप्प हो जायेगा। गिरने का क्रम अलग है और उठने का दूसरा। ढेला ऊपर फेंकना हो तो वह क्रम उतनी ही देर तक, उतनी ही दूरी तक सफल होगा जब तक कि उसके पीछे फेंकने वाली शक्ति काम करती रहेगी। परिवार निर्माण की प्रक्रिया पर भी ये ही तथ्य लागू होते हैं। सभी जानते हैं कि खर्च जुटाने के लिए आदमी के स्रोत निरंतर खुले रखने की आवश्यकता होती है। आमदनी बंद होते ही खर्च के लाले पड़ जाते हैं। ठीक इसी प्रकार परिवार निर्माण के लिए प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने की जागरूकता एवं तत्परता जब तक काम करती रहेगी तभी तक वह प्रयास भी सफल होता रहेगा। इस संदर्भ में न तो उथले प्रयत्न सफल होते हैं और न हाथ खींच लेने पर स्वयंमेव चलते रह सकते हैं। जब तक हर छोटा-बड़ा काम सफलता के स्तर तक पहुँचाने के लिए आवश्यक सूझ-बूझ, श्रमशीलता और साधन सामग्री की अपेक्षा

करता है तो फिर परिवार निर्माण ही उसका अपवाद कैसे हो सकता है।

निर्जीव निर्माण सरल है सजीवों का उत्कर्ष कठिन है। वस्तुएँ जहाँ की तहाँ रखी रहती हैं। अपने मन से उलट-पुलट नहीं करतीं। यह सजीव प्राणी तो हर घड़ी कुसंस्कारिता का परिचय देने और नई-नई समस्याएँ उत्पन्न करने से नहीं चूकते। ऐसी दशा में प्राणियों का, विशेषतया मनुष्यों का भावनात्मक निर्माण कितना कठिन हो सकता है इसे कल्पना से नहीं अनुभव से ही जाना जा सकता है। सरकस के जानवर साधने का काम जिन्हें करना पड़ता है—वे बता सकते हैं कि अनगढ़ पशुओं को कुशल कलाकार की तरह रंगमंच पर आने योग्य बनाने में कितने मनोयोग एवं परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। परिवार भी एक पूरा सरकस है जिसमें विभिन्न स्तर और प्रकृति के प्राणी बसते हैं। उनका शरीर पोषण तो सरल है पर बौद्धिक एवं भावनात्मक निर्णय करने के लिए असाधारण दूरदर्शिता और तत्परता अपनानी पड़ती है। इतना सब किये बिना मात्र शुभेच्छा का मूल्य कल्पना-जल्पना जितना उपहासास्पद बनकर ही रह जाता है।

परिवार निर्माण का प्रत्यक्ष पक्ष इतना ही है कि उस परिवार में रहने वाले प्रत्येक परिजन का वर्तमान सुखद और भविष्य उज्ज्वल बनता है। निर्माताओं को इसके बदले में आत्म संतोष, गर्व-गौरव, श्रद्धा-सम्मान एवं यश-श्रेय प्राप्त होता है। फले-फूले उद्यान को लगाने सजाने वाला माली, सामान्य श्रमिकों की तुलना में कुछ अधिक ही श्रेय और लाभ कमाता है। परिवार निर्माण में तत्पर मनुष्य की उपलब्धियाँ किसी कुशल माली, भवन निर्माता, सफल उद्योगपति, सरकस के रिंग मास्टर से अधिक ही आंकी जाती हैं, कम नहीं।

यह तो प्रत्यक्ष की चर्चा हुई। परोक्ष इससे अगला क्षेत्र है। निर्माता अपने आप में उच्चस्तरीय प्रवीणता प्राप्त करता है। वाद्य-यंत्रों के ध्वनिप्रवाह से श्रोताओं को तरंगगित होने का अवसर मिलता है पर इसके लिए प्रयास-रत वादक की कला भी निखरती है और उसके व्यक्तित्व की कीमत भी बढ़ती है। पर उसके निर्माण में

प्रवीणता अर्जित करने वाले धन और यश भी कमाते हैं। साहित्यकार, कलाकार लोकरंजन की कुशलता से अनेकों को गुदगुदाते हैं पर उस परमार्थ के बदले उन्हें जो व्यक्तिगत लाभ मिलता है वह पाठकों और दर्शकों की अपेक्षा कम नहीं अधिक मूल्य का ही होता है।

दूसरे के हाथों को रचाने के लिए मेंहदी पीसने वाले के हाथ अनायास ही रच जाते हैं। इत्र बनाने वाले श्रमिकों के हाथ और कपड़े बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के ही महकते रहते हैं। सत्प्रयोजन में संलग्न व्यक्तियों को उन प्रयोजनों में संलग्न अनेक विशेषताओं और प्रवीणताओं का लाभ सहज ही मिलता रहता है। रंग-मंच सजाने का काम करने वाले कर्मचारी उस दृश्य का आनंद मुफ्त में ही लेते रहते हैं। परिवार निर्माण में प्रधानतया सद्विचारों और सद्गुणों का प्रयोग करना पड़ता है। यह प्रशिक्षण मात्र वाणी से नहीं हो सकता, शिक्षक को अनिवार्यतः अपना उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। गीली मिट्टी से सुंदर खिलौने की कृति पहले से ही साफ-सुथरे ढंग से उभरी हुई है। इसमें कमी रहेगी तो जो बनेगा वह भी काना-कुबड़ा ही होगा।

व्यक्ति-निर्माण में कभी भी मात्र बौद्धिक प्रशिक्षण कारगर सिद्ध नहीं हुआ है। प्रभावी प्रवचनों और प्रदर्शनी से यदि व्यक्तित्वों को ढालना संभव रहा होता तो यह काम कब का हो गया होता और इसे समर्थ लोगों ने कब का कर लिया होता। ज्योति से ज्योति जलती है और तेजस्वी व्यक्तियों के प्रभाव से नये व्यक्ति ढलते बदलते हैं। अस्तु परिवार के जिन मूर्धन्य लोगों को अपने क्षेत्र में नव सृजन करना है उन्हें वह सब कुछ पहले अपने स्वभाव में उतारना होगा जो उन्हें परिजनों से कराना है। समझाने भर से काम हो जाता तो कितना अच्छा होता, तब समझ की तूती बोलती और चरित्र निष्ठा के द्वार खटखटाने की आवश्यकता न पड़ती। किंतु विवशता को क्या किया जाए ? प्राचीनकाल में भी गुरुकुलों के कुलपति ही नर रत्नों की टकसाल बनाकर दिखाते थे और वही प्रक्रिया अनंत काल तक चलेगी।

परिवार में उत्कृष्टता का वातावरण बनाना इस दृष्टि से थोड़ा कठिन भी है, पर उसकी तुलना में जो लाभ मिलता है, उसे देखते हुए कठिनाई अथवा परिश्रम रत्ती भर भी नहीं है। इस प्रयास में संलग्न होने वाले परिजनों का सर्वोपरि लाभ ऐसा है जिसकी तुलना अन्य किसी से नहीं की जा सकती है।

परिवार निर्माण के लिए तत्पर होने में प्रिय परिजनों का सर्वोपरि लाभ ऐसा लाभ है जिसकी तुलना किसी सौभाग्य से नहीं हो सकती। उत्तराधिकारियों के लिए धन वैभव छोड़ सकना उतना सुखद नहीं हो सकता जितना उन्हें सुसंस्कारी बना देना। यह सम्पत्ति ऐसी है जो उनको सदा गौरवान्वित रखेगी और पग-पग पर श्रेय, सहयोग से लाभान्वित करेगी। सफलताएँ किसी भी क्षेत्र की क्यों न हों उन्हें व्यक्तित्व सम्पन्न लोग ही प्राप्त करते हैं।

इस सृजन में सर्वोपरि लाभांश सृजेता के हिस्से में आता है। मूर्तियाँ गढ़ने से, चित्र बनाने से, अभिनय से दर्शकों को लाभ मिलता है और वे कृतियाँ भी सम्मानास्पद होती हैं किंतु गढ़ने वालों को आर्थिक लाभ भी होता है, संतोष भी मिलता है साथ ही अपनी कलाकारिता को अधिकाधिक समुन्नत बनाने का वह लाभ भी मिलता है जो उस सृजन से संबंधित अन्य किसी को भी नहीं मिलता। उच्चस्तरीय कलाकारिता की उपलब्धि सभी सिद्धियों की तुलना में कहीं अधिक ऊँची है। परिवार सृजन में संलग्न व्यक्तियों को असामान्य कलाकार कह सकते हैं। सामान्य कलाकार वस्तुओं को गढ़ने और हलचलों में सौष्ठव भरने तक सीमित रहते हैं। यह जड़ पदार्थों को पदार्थ जन्य हलचलों से आकर्षित बनाने भर की बात हुई। बड़ी बात वह है जिसमें मनुष्य जैसे उद्धत प्राणी को सुसंस्कारिता से संपन्न करते हुए देव स्तर तक पहुँचाया जाए।

दूसरों की आदतें बदलने के लिए अपनी आदतें बदलनी होती हैं। दूसरों का स्वभाव सुधारने के लिए पहले अपना स्वभाव सुधारना होता है। उपदेशों से जानकारी भर दी जा सकती है। व्यक्ति का सुधारना उन्हीं के लिए संभव होता है जो अपने आपको आदर्श के रूप में विकसित कर सके हैं। शिक्षा तो सहज ही सुनी जा सकती है

पर प्रेरणा तभी मिलती है जब अनुकरण के लिए प्रभावशाली आदर्श सामने हों। ज्योतिवान दीपक ही दूसरे नयों को जलाता है। साँचे के अनुरूप ही खिलौना या पुर्जे ढलते हैं। दूसरे को कुछ सिखाना बताना भर हो तो बात दूसरी है अन्यथा ढालने का लक्ष्य सामने हो तो सर्वप्रथम स्वयं ढलने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

परिवार को सुसंस्कारी बनाने के प्रयास में उसके लिए अग्रणी लोगों को सर्वप्रथम अपनी ही गढ़ाई करनी पड़ती है। इस संदर्भ में जो जितनी सफलता प्राप्त कर लेंगे उन्हें परिवार निर्माण में उसी अनुपात में सफलता मिलेगी। जो गुण सहचरों में उत्पन्न करने हैं वे सर्वप्रथम अपने में उत्पन्न करने होंगे। अनुकरण प्रिय मनुष्य प्राणी जो कुछ समझता है उसमें तो शिक्षकों के परिश्रम का फल भी कहा जा सकता है पर जो बनता है उसमें प्रायः उन्हीं के चरित्रों का योगदान होता है जो साथ रहते और प्रभावित करते हैं। कुसंग और सत्संग के परिणामों से सभी परिचित हैं। इनमें शिक्षण परामर्श नहीं वह प्रभाव काम करता है जो साथी की भली बुरी विशिष्टता के कारण उत्पन्न होता है।

परिवार निर्माण की दृष्टि से यह नितांत आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। मखौलबाजी और विडंबना बनानी हो तो 'पर उपदेश कुशल' रहने से भी काम चल सकता है, किंतु यदि वस्तुतः सत्परिणाम ही चाहिए, तो सृजेताओं को यह सिद्ध करना होगा कि जो कहा जा रहा है, उस पर उनकी गहन आस्था है। यह प्रमाण अपने चरित्र और चिंतन में उच्चस्तरीय आदर्शों का समावेश किए बिना और किसी प्रकार संभव नहीं। जो इस सत्य को समझेंगे और परिवार निर्माण के लिए वस्तुतः इच्छुक होंगे, उन्हें यह प्रयास आत्म निर्माण से आरंभ करना होगा ताकि ढलाई की जटिल प्रक्रिया को सरल एवं संभव बनाया जा सके। यह है वह लाभ जो परिवार निर्माण के लिए प्रयास करने वाले को अनायास ही उपलब्ध होता है।

घर को तपोवन बनाने की बात कही जाती रही है। गृहस्थ को योग की संज्ञा दी गई है। पतिव्रता, पत्नीव्रत, पितृ-सेवा, शिशुवात्सल्य, समता, सहकार की सत्प्रवृत्तियाँ यदि सघन सद्भावना की मनःस्थिति

में यदि संपन्न की जा सकें तो उसका महत्त्व योगाभ्यास एवं तप साधना से किसी प्रकार कम नहीं होता। इस प्रतिपादन में सहस्रों कथा-गाथाओं से इतिहास-पुराणों के पन्ने भरे पड़े हैं। कर्म-योग की जितनी उत्तम साधना गृहस्थ में हो सकती है, उतनी कदाचित् ही अन्यत्र बन पड़े। इस प्रसंग में यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि आत्म-निर्माण के लिए सरल और सार्थक साधना पद्धति परिवार निर्माण के रूप में ही प्रयुक्त हो सकती है। ऋषि इसी कार्य को गुरुकुलों में, आरण्यकों में संपन्न करते थे। परिवार का तात्पर्य समुदाय है विशेषतया पिछड़े वर्ग का समुदाय। शिवजी की बारात का वर्णन जिनने पढ़ा है, वे जानते हैं कि 'तनु छीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन तनु धरे' भूत-पलीतों का पिछड़ा वर्ग ही उनका समुदाय था। दयालु व्यक्ति उसी समुदाय पर अपना ध्यान केंद्रित करते और उनकी सुख-सुविधा जुटाने में आत्मोत्कर्षक करते रहते हैं। मूर्धन्यों की पारिवारिकता इसी स्तर पर परिलक्षित होती है।

परिवार निर्माण की प्रतिक्रिया समाज-निर्माण में होने की बात समझने में किसी विचारशील को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। जिन महामानवों ने विश्व इतिहास में महती भूमिकाएँ संपन्न की हैं, उनके व्यक्तित्व सुसंस्कृत वातावरण में ही ढले थे। निजी प्रतिभा का मूल्य स्वल्प और प्रभावी वातावरण की क्षमता महान् है। प्रतिभाएँ कुसंस्कारी वातावरण में ढलती हैं तो वे दुष्ट दुरात्मा बनकर अपना और दूसरों का अहित ही करती रहती हैं। यदि उन्हें सुसंस्कृत परिस्थितियों में पलने परिपक्व होने का अवसर मिला होता तो निश्चय ही स्थिति सर्वथा भिन्न होती। परिस्थितियों ने जिन्हें डाकू बना दिया यदि उन्हें दिशा और सहायता मिली होती तो किसी सेना का कुशल सेनापति अथवा साहसिक नेतृत्व कर सकने में पूर्णतया सफल सिद्ध हुआ होता। व्यक्ति की मौलिक प्रतिभा को कितना ही महत्त्व और श्रेय क्यों न दिया जाए, वातावरण के प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता। कहना न होगा कि मनुष्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सबसे अधिक सामर्थ्य परिवार के वातावरण में ही होती है। जो उसका निर्माण कर सकें, वे प्रकारांतर से सच्चे समाज सेवक हैं।

जिस प्रयास से नर-रत्न उपलब्ध हो सकें, उसकी प्रशंसा हजार जीभों से करनी पड़ेगी।

रस्सा और कुछ नहीं बिखरे हुए धागों का संयुक्त समुच्चय भर है। समाज और कुछ नहीं परिवारों में बसे हुए मनुष्यों का समुदाय मात्र है। व्यक्तियों का उत्पादन ही नहीं, परिपोषण और परिष्कार भी उसी में होता है। समाज जैसा भी कुछ है, पारिवारिक परंपराओं की देन है। समाज को जैसा भी कुछ बनाना है, वैसी ही परिस्थितियाँ परिवारों में उत्पन्न करनी होंगी। व्यक्ति के एकाकी निर्माण की कोई तुक नहीं।

बहरे इसलिए गूँगे होते हैं कि वे सुन नहीं पाते और शब्दोच्चार प्रक्रिया के अनुकरण का अवसर नहीं पाते। यदि कोई बहरा सुनने लगे तो कुछ ही दिन में उसका गूँगापन अच्छी खासी वाचालता में बदल जाए। यह अनुकरण का चमत्कार है। व्यक्ति की आंतरिक ढलाई की दो तिहाई मात्रा दस वर्ष तक पूरी हो चुकी होती है। प्रकृति की दृष्टि में व्यक्ति सारे जीवन में एक तिहाई संस्कार ही ग्रहण कर पाता है। दस वर्ष तक की वय प्रायः परिवार की परिधि में ही व्यतीत होती है। प्रौढ़ावस्था आने पर भी मनुष्य को प्रायः तेरह घंटे घर के भीतर ही रहना पड़ता है। स्त्रियाँ और बाल-वृद्ध तो अपना अधिकांश समय उसी सीमा में रहकर व्यतीत करते हैं। इसी क्षेत्र में यदि शालीनता और समर्थता बनी होगी तो निश्चय ही उस परिधि में रहने वालों को ऐसा अनुदान मिलता रहेगा, जिसके सहारे अपनी उपयोगिता एवं विशिष्टता का परिचय दे सकें, इसे समाज निर्माण का सुदृढ़ और चिरस्थायी आधार समझा जाना चाहिए।

किसी राष्ट्र की समृद्धि सामर्थ्य, प्रतिभा एवं वरिष्ठता सरकारी-दफ्तरों या अफसरों में सीमित नहीं होती वहाँ तो उसकी झाँकी मात्र मिलती है। छावनियों में रहने वाली सेना किसी राष्ट्र की शक्ति नहीं है, वास्तविक शौर्य पराक्रम तो गली मुहल्लों और घर-परिवारों में उगता और बढ़ता है। छावनियों में सेना उपजती नहीं, वह परिवारों से ही आती है। राष्ट्रीय समृद्धि के लिए सरकारी कोष की नाप-तौल करना अपर्याप्त है। समृद्धि तो परिवारों में संचित रहती

है। सरकार तो उन पर टैक्स लगाकर निचोड़ती भर है। राष्ट्रीय चरित्र का मूल्यांकन अफसरों को देखकर नहीं नागरिकों के स्तर से किया जाता है। संत ऋषी, महापुरुष, सुधारक, प्रज्ञावान मूर्धन्य कलाकार आसमान से नहीं टपकते। उन्हें आवश्यक प्रकाश पारिवारिक वातावरण तथा संपर्क में आने वाले स्वजन-परिजनों से उपलब्ध होता है। अन्न कोषों में भरा तो रहता है पर उसका उत्पादन खेतों में होता है और खेत का हर पौधा उस संपदा को बढ़ाने में समर्थ सहभागी की भूमिका निभाता है।

समाज निर्माण के लिए कुछ भी किया या कहा जाता रहे, आंदोलन और प्रचार के लिए किसी भी प्रक्रिया को क्यों न अपनाया जाए, किंतु वास्तविकता की आधारशिला परिवार के प्रचलन में सुधारात्मक प्रवृत्तियों के समावेश से ही संभव हो सकेगी। जड़ को सींचे बिना पत्ते धोने और उद्यान को सुरम्य बनाने में अन्य उपाय आधे-अधूरे ही बने रहेंगे। वृक्षों को खुराक तो जड़ों से मिलती है, समाज का अक्षयवट अपना परिपोषण परिवारों से—उनमें व्यवस्थित क्रम से रहने वाले व्यक्तियों से—ही प्राप्त करता है। अस्तु समाज-निर्माण की बात सोचने वालों को उस महान् आरोपण के लिए परिवारों की क्यारियाँ ही उर्वरता सम्पन्न बनानी होंगी इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है।

❑ ❑

परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण

परिवारों में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाना, परिजनों को आदर्शवादी उत्कृष्ट चिंतन परायण बनाना परिवार निर्माण की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिए घर के सभी विचारशील परिजनों को चाहिए कि वे परिवार के लोगों का इस तरह से प्रशिक्षण करें कि उन्हें आदर्शवादिता की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती रहे। प्रेरणा ही नहीं दिशा और शिक्षण भी प्राप्त होता रहे। इसके लिए व्यवस्था बनानी चाहिए और इस परंपरा को आरंभ कर देना चाहिए जिससे इस संदर्भ में प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन एवं उपदेश का अवसर कम ही आए और सुसंस्कारों के संवर्धन का परोक्ष शिक्षण प्रयत्न अनवरत रूप से चलता रहे। इस शिक्षण के प्रभाव से घर का वातावरण ऐसा बनता है जिसमें शालीनता झलके। धर्म का, धार्मिकता का यही उद्देश्य है। आज कर्मकांडों और प्रचलनों को ही धार्मिकता माना जाने लगा है। पर वास्तविकता दूसरी ही है। धर्म, कर्त्तव्य को कहते हैं। धार्मिकता, शालीनता के प्रति अंतःक्षेत्र की गहराई में उच्चस्तरीय आस्थाएँ जमने और उन्हें परिपक्व करने की प्रक्रिया भर है। इसी के लिए अनेकानेक प्रथा परंपराओं एवं कर्मकांडों का निर्धारण तत्त्व ज्ञान द्वारा किया गया है। यह पुण्य परंपराएँ जहाँ भी सही रूप में चलती होंगी वहाँ के निवासी अनायास ही उपयोगी प्रेरणाएँ प्राप्त करेंगे और चिंतन तथा चरित्र में उत्कृष्टता की मात्रा बढ़ाते चलेंगे। परोक्ष शिक्षण की पद्धति व्यक्ति निर्माण जैसे प्रयोजनों में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है। मुख से उपदेश देने की अपेक्षा वातावरण द्वारा उपयोगी तत्त्वों को ग्रहण करने का अवसर मिलता रहे तो वे उपलब्धियाँ अंतराल की गहराई तक उतर जाती हैं और चिरस्थायी बनती हैं। घर का वातावरण इसी प्रकार का बनाना चाहिए जिसे धार्मिक कहा जा सके। सुसंस्कारिता ऐसी ही

परिस्थितियों में पनपती और फूलती-फलती है। दूरदर्शिता इसी में है कि घर के वातावरण में धार्मिकता का ऐसा वातावरण बनाया जाए कि आध्यात्मवादी आस्थाएँ सहज गति से पनपती रहें। परिजनों के उज्ज्वल भविष्य में यह प्रयास असाधारण रूप से सहायक सिद्ध होता है। परामर्श, उपदेश एवं प्रशिक्षण की तीनों ही आवश्यकताएँ वैसे वातावरण में पूरी होती रहती हैं। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए पाँच उपचार हर सद्गृहस्थ के यहाँ चलते रहने चाहिए।

भारतीय मनीषियों ने इस तथ्य को भली भाँति समझा था और नित्य कर्मों का विधान किया था। इन नित्य कर्मों में पंच महायज्ञ, सामूहिक उपासना आदि का प्रचलन था और इन नित्यकर्मों में व्यवधान को महापातक कहा था। इनकी अनिवार्यता इसलिए बताई गई थी कि परिवार में धार्मिकता का वातावरण बना रहे। धार्मिकता अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता, शालीनता। मनुष्य को प्रभावित करने वाली स्थितियों में वातावरण सबसे प्रधान है। इसकी प्रभाव शक्ति से सभी परिचित हैं। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर उसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है। चिंतन, प्रचलन एवं व्यवहार की समन्वित शक्ति इतनी प्रचण्ड होती है कि उसकी चपेट में जो भी आता है तदनुकूल बनता एवं ढलता चला जाता है। परिवार के वातावरण में आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता के तत्त्व घुले रहने से स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने और सज्जनोचित दिशा निर्धारण करने की प्रेरणा हर सदस्य को मिलती और कालान्तर में वह हर दृष्टि से उपयोगी ही सिद्ध होती है। इस प्रयास में थोड़ा समय भर लगाना पड़ता है। कोई साधन जुटाने, खर्च करने एवं झंझट उठाने जैसी कठिनाई का सामना भी नहीं करना होगा।

परिवारों का धार्मिक वातावरण बनाने में सहायता करने वाले पाँच प्रचलन मुख्य हैं—(१) नमन वंदन, (२) यज्ञीय आचरण, (३) सहगान, (४) स्वाध्याय अंशदान, (५) कथा श्रवण। इन पाँचों को सरलता पूर्वक हर घर में संपन्न किया जा सकता है और इसका श्रेयस्कर प्रभाव अविलंब देखा जा सकता है।

(१) नमन वंदन—

आस्तिकता-ईश्वर विश्वास मनुष्य पर एक ऐसा अंकुश है जिसमें उसे दुष्कर्मों का प्रतिफल देर सवेर से मिलने का भय बना रहता है। साथ ही यह भी निश्चय रहता है कि नियामक सत्ता आज नहीं तो कल परसों सत्कर्मों का परिणाम प्रदान करेगी। भले-बुरे कर्मों का तत्काल फल न मिलते देखकर लोगों का मन कर्मफल के बारे में अनिश्चित हो जाता है, फलतः न तो दुष्कर्मों से डरते हैं और न सत्कर्मों के संबंध में उत्साहित होते हैं। ईश्वर के अस्तित्व और उसके कर्मफल विधान की निश्चिंतता पर विश्वास दिलाना आस्तिकता का प्रथम उद्देश्य है। सच्चे आस्तिक की चरित्र निष्ठा डगमगाने नहीं पाती।

उपासना का लक्ष्य है—ईश्वर की महानता के समीप पहुँचना, घनिष्ठ बनना। अर्थात् अपने चिंतन और चरित्र में ईश्वरीय विशेषताओं को भरते-बढ़ाते चले जाना। ईश्वर विराट् है। उसकी उपस्थिति प्राणिमात्र में, कण-कण में अनुभव करते हुए चेतना के प्रति सद्भाव रखना, सद्व्यवहार करना साथ ही पदार्थ संपदा को ईश्वर की अमानत मानकर उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करना—ये ही हैं वे प्रतिक्रियाएँ जो उपासक के अंतःक्षेत्र में स्वाभाविक रूप से उभरनी चाहिए। आस्तिकता के दो प्रतिफल हैं, चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा। सच्चे ईश्वर विश्वासी को उदात्त और सदय बनना ही चाहिए। आत्मा के स्तर को परमात्मा जैसा ऊँचा उठा, क्षुद्रता को महानता में परिवर्तित करना, उपासना की भाव-भरी प्रेरणा है। जिसे यह लाभ मिलेगा वह पुरुष से पुरुषोत्तम बनकर रहेगा। सच्ची आस्तिकता के अभाव में लोग पूजा के फलस्वरूप मनोकामना पूरी कराने की आस लगाये रहते हैं और छुटपुट क्रिया-कृत्यों के बदले पाप दंड से बच निकलने एवं सस्ते मोल में ईश्वर की अनुकंपा के चमत्कारी लाभ पाने की कल्पना करते रहते हैं।

आस्तिकता के नाम पर प्रचलित भ्रांतियों का निराकरण और तथ्य से अवगत कराने का प्रयत्न नए सिरे से करना होगा और पुरातन ईश्वर विश्वास को जन-जन के मन-मन में जगाना होगा। उपासना का क्रियाकृत्य

करने के लिए हर व्यक्ति को प्रेरित किया जाना चाहिए। भले ही वह न्यूनतम की क्यों न हो। इस संदर्भ में 'नमन वंदन' सबसे छोटा और सरल कार्यक्रम है। गायत्री युग शक्ति है उसी का प्रज्ञावतरण सामयिक समस्याओं का समाधान और उज्ज्वल भविष्य का सूत्र संचालन करेगा। गायत्री की ऋतंभरा प्रज्ञा सार्वभौम और सार्वजनीन है। सद् विचारणा और सद्भावना की अधिष्ठात्री गायत्री माता की अभ्यर्थना ही युग साधना है। इसके लिए देव परिवारों को अपने घर के सभी परिजनों को अभ्यस्त करना चाहिए। जो अधिक समय गायत्री उपासना कर सकें वे वैसा करें अन्यथा इतना तो किया ही जाना चाहिए कि नित्य कर्म के उपरांत घर का हर सदस्य प्रतिष्ठापित गायत्री माता के चित्र के सम्मुख हाथ जोड़कर आँख बंद करके मानसिक जप और आत्म संस्थान में प्रकाश के अवतरण का ध्यान करे। इसके बाद ही भोजन एवं अन्य कर्म किये जाए।

नमन वंदन का दूसरा स्वरूप यह है कि घर के छोटे लोग अपने से बड़ों का अभिवादन करें। जिन्हें चरण स्पर्श में संकोच न पड़ता हो वे वैसा करें अन्यथा हाथ जोड़कर नमस्कार करना तो अनिवार्य ही रहे। भूल जाने पर बड़े भी छोटों को अभिवादन करें इसमें बड़ों के सम्मान करने एवं वरिष्ठों का अनुशासन मानने का भाव है। यह प्रचलन घर के सदस्यों में निश्चित रूप से सद्भावना की वृद्धि करता है। अस्तु देव वंदन और वरिष्ठ वंदन की दोनों ही परंपराओं का निर्वाह परिवार निर्माण अभियान के अंतर्गत धार्मिक वातावरण बनाने के लिए आवश्यक माना जाना चाहिए।

(२) यज्ञाय आचरण—

यज्ञ अर्थात् पवित्र-परमार्थ। जीवन-यज्ञ अर्थात् पवित्र जीवन। परमार्थ परायणता का लक्ष्य। अग्नि होत्र में अपने प्रिय पदार्थों को लोक-कल्याण के लिए वायुमंडल में बिखेरने की प्रक्रिया संपन्न की जाती है। परमार्थ प्रवृत्ति का प्रतीक मानकर समय, श्रम एवं सद्भाव समर्पण ही प्रकारांतर से यज्ञीय कर्मकांड का सार तत्त्व है। इस देव प्रवृत्ति को जन-जन में जगाया जाना चाहिए और उसका प्रतीक पूजन अपने परिवारों से आरंभ करना चाहिए। 'वलि वैश्व' परंपरा को दैनिक धर्म कृत्य माना गया है। उसका प्रचलन इन दिनों लुप्त प्राय: हो गया है। हमारे परिवारों से उसका पुनर्जीवन आरंभ होना चाहिए।

चौके में जब भोजन तैयार हो जाए तो खाना आरंभ करने से पूर्व चूल्हे में से अग्नि बाहर निकालकर प्रज्वलित की जाए और रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े जौ जितने आकार के टुकड़े घी और शक्कर मिलाकर गायत्री मंत्र उच्चारण करते हुए पाँच बार में हवन कर दिए जाएँ। बाद में जल अँजलि को उस अग्नि के चारों ओर परिक्रमा रूप में घुमा दिया जाए। इस अग्नि को पवित्र माना जाए। बुझने पर भस्म को सुरक्षित रख लिया जाए और सुविधानुसार किसी पवित्र जलाशय में विसर्जित कर दिया जाए। यही है वलि वैश्व अग्निहोत्र की सरल प्रक्रिया जिसे महिलाएँ बड़ी आसानी से बिना किसी अड़चन के अपने घरों में नियमित रूप से करती रह सकती हैं। इसमें खर्च कुछ नहीं, किसी प्रकार का झंझट भी नहीं। इस पुनीत प्रक्रिया में भाव भरा आदर्श यह सन्निहित है कि यज्ञीय परंपरा का परिपोषण करने में इस परिवार की सुनिश्चित आस्था है।

भगवान को भोग लगाकर तब प्रसाद ग्रहण करने की परंपरा भारतीय संस्कृति का अंग है। कमाना अपना पुरुषार्थ है, पर खाने से पूर्व विराट् ब्रह्म की—विशाल विश्व की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए। उपार्जन का समर्पण भगवान की ब्रत्प्रवृत्तियों को, बचा हुआ निर्वाह अपने लिए, यही है ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति योग का सार निष्कर्ष। यज्ञ कृत्य में इसी बलिदर्शन की प्रतीक पूजा की जाती है और प्रेरणा ग्रहण की जाती है कि व्यक्तिगत रीति-नीति से जीवन को यज्ञमय बनाना लक्ष्य होगा तथा समाज में संसार से कुछ उठा न रखा जाएगा। इन्हीं आदर्शों की मूर्तिमान पूजा प्रक्रिया उन्हें जीवंत रखने तथा परिपुष्ट बनाने की शपथ 'वलि वैश्व' के रूप में हर दिन उठाई जाती है।

गायत्री को भारतीय संस्कृति की माता और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है। दोनों की अभ्यर्थना अपने परिवारों में नियमित रूप से होनी चाहिए। 'नमन वंदन' के माध्यम से गायत्री उपासना का न्यूनतम क्रियाकलाप संपन्न होता है और वलि वैश्व की पाँच आहुतियों द्वारा यज्ञ देव की अभ्यर्थना की जाती है। भगवान पहले पीछे का तात्पर्य है—आदर्श पहले समाज पहले। उसके उपरांत निर्वाह एवं उपभोग।

वलि वैश्व का नन्हा-सा क्रिया-कृत्य भोजन बनाने वाली एक महिला एक मिनट समय में पाँच रत्ती सामग्री हवन करके पूरा कर देती है, पर उस भावना से परिचित हर किसी को होना चाहिए। समय-समय पर वलि वैश्व की-यज्ञ दर्शन की व्याख्या विवेचना होनी चाहिए और अपनी परंपरा में उस दर्शन की प्रमुखता रहने की स्मृति रहने की प्रेरणा मिलती रहनी चाहिए।

वलि वैश्व की पाँच आहुतियाँ पारिवारिक पंचशीलों के साथ अविछिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। पंचशील में (१) सुव्यवस्था (२) नियमितता (३) सहकारिता (४) प्रगतिशीलता (५) शालीनता है। इनकी विवेचना अगले पृष्ठों में दी जा रही है। भोजन को पेट में अवस्थित वैश्वानर भगवान तक पहुँचाने से पूर्व हर सदस्य पाँच बार गायत्री मंत्र का मौन रूप से या उच्चारण पूर्वक पाठ कर लिया करे। यह भी मानसिक अग्निहोत्र एवं वलि वैश्व का ही प्रतीक है।

(३) सामूहिक प्रार्थना, आरती, सहगान—

सामूहिक प्रार्थना का क्रम हर घर में चलना चाहिए। एकाकीपन का स्थान हर क्षेत्र में सामूहिकता को लेना चाहिए। मिल-जुलकर किये गये कार्य हर दृष्टि से अधिक प्रभावी और अधिक सफल होते हैं यह दृष्टि उपासना के संदर्भ में रखी जाए। एकाकी उपासना के अतिरिक्त सामूहिक प्रार्थना में भाग लेना भी आवश्यक समझा जाए। यह सामूहिक पूजा, आरती से एक धर्म परंपरा के रूप में आरंभ होनी चाहिए और उसका विस्तार घर के हर काम में मिल-जुलकर करने का उत्साह निरंतर बढ़ना चाहिए। मिल-जुलकर काम करना खेल की तरह आनंददायक हो जाता है। कुशलता बढ़ती है और प्रतिफल का उपयोग करने में गर्व एवं संतोष होता है।

प्रातःकाल जल्दी उठने की आदत पड़ सके तो सामूहिक प्रार्थना, आरती एवं सहगान में से तीनों का या एक दो की जो व्यवस्था बन सके वह बनानी चाहिए। यह कार्य सूर्योदय से पूर्व ही हो जाने का है। यह बात सायंकाल के संबंध में भी है। तीनों में से एक, दो या तीनों को करने में जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा करना चाहिए। सूर्य अस्त होने के उपरांत सोने तक के समय में से

जो जहाँ अनुकूल पड़े निर्धारित रखा जा सकता है। आरती की विधि सबको मालूम है, उसमें अधिक आवाज करने वाले शंक, घडियाल, झाँझ आदि या कम आवाज करने वाले घंटी, मंजीरा आदि का उपयोग हो सकता है।

आरती को शास्त्रीय विधि से करना हो तो उसके लिए निर्धारित विधि-विधान अपनाया जा सकता है। इसकी पुस्तिका भी उपलब्ध है। टैप बनाए गए हैं जो टैप रिकार्डर पर चढ़ा देने से परिपूर्ण आरती का आनंद देते हैं। इनके साथ-साथ धीमे स्वर से घर के लोग उच्चारण करते रहें तो कंठ भी सधेगा और स्वर विभेद के कारण उत्पन्न होने वाली अस्त-व्यस्तता भी उत्पन्न न होगी। आरती के बाद अध्यात्म एवं धर्म की दिशा में मनोभूमि को अग्रसर करने वाले एक दो गीत अदल-बदलकर गाए जाने चाहिए। यह भाव प्रशिक्षण, सम्मिलित होने वालों पर सुसंस्कारी छाप डालता है। इस गायन के साथ वाद्ययंत्रों का भी जहाँ समावेश हो सके वहाँ उसके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। संगीत कला को इस आधार पर घर-घर में जीवंत रखा जा सकता है। साथ ही धर्म शिक्षा का प्रयोजन भी नियमित रूप से पूरा होता रह सकता है।

(४) स्वाध्याय का ज्ञान यज्ञ—

काया को भोजन, मस्तिष्क को स्वाध्याय और अंतःकरण को उपासना का अवसर देने से सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीरों का परिपोषण होता है। तीनों को ही खुराक मिलती रहे इनमें से एक भी तो भूखा न रहने पाए ऐसा प्रबंध हर घर में रहना चाहिए। स्वाध्याय को ज्ञान यज्ञ कहा गया है। प्राचीन काल में उच्चस्तरीय सत्संग भी सर्व सुलभ था, पर अब न वैसे लोग रह गए हैं और न समय संबंधी सुविधा है। फिर प्रेस विस्तार ने साहित्य के माध्यम से वह प्रयोजन और भी सरल कर दिया है। अपने घरों में युग साहित्य को स्वाध्याय का आधार माना जाए और उसके लिए नियमित समय निकाला जाय उसे नित्य कर्म में सम्मिलित रखा जाएं। इसके लिए घर में एक छोटा पुस्तकालय चले और उसका लाभ हर सदस्य उठाए। पढ़े लिखे परिजन अपनी सुविधा के समय न्यूनतम आधा घंटा स्वाध्याय के लिए किसी न किसी प्रकार समय अनिवार्य रूप से निकालें। इसे भोजन की

तरह ही आवश्यक समझें और भजन के समतुल्य मानते हुए उसे जीवनचर्या में प्रमुखता दें। जो बिना पढ़े हैं उन्हें पढ़े लिखे सदस्य साहित्य पढ़कर सुनाया करें। भाषा की जटिलता एवं उच्च विचारों को न समझ पाने की कठिनाई को सरल भाषा में व्याख्या करके भी समझाया जा सकता है।

युग निर्माण मिशन के हर कर्मठ कार्यकर्त्ता को परिवार निर्माण के लिए घरेलू ज्ञान मंदिर स्थापित करने चाहिए इसके लिए ज्ञानघट की स्थापना करने का अनुरोध आरंभ से ही किया जाता रहा है। मिशन के प्रति आस्था परिपक्व होने का प्रमाण घर में ज्ञान मंदिर की-घरेलू ज्ञान मंदिर की स्थापना को माना गया है। पूजा कक्ष की जितनी उपयोगिता है उतनी इस ज्ञान मंच की भी है। सद्ज्ञान को अपनाने की प्रेरणा ही ज्ञानयज्ञ अभियान का प्रथम चरण है। यह घरेलू पुस्तकालयों से ही पूरा होता है। विचार क्रांति को इसी आधार पर व्यापक बनाया जा सकता है। जन-मानस के परिष्कार में जितना योगदान परामर्श प्रशिक्षण का है उतना ही युगांतरीय चेतना को नियमित स्वाध्याय के माध्यम से लोकमानस में उतारने का भी है।

ज्ञान घटों की स्थापना और उस राशि से घरेलू पुस्तकालयों की स्थापना को मिशन की सक्रिय सदस्यता का अनिवार्य शुल्क माना गया है। उपयोगिता न समझ पाने के कारण इस संदर्भ में जहाँ भी अब तक उपेक्षा बरती गई हो वहाँ अब इस प्रौढ़ता की अवधि आने पर अंत होना ही चाहिए। हमारे हर घर में ज्ञान घट निश्चित रूप से रखे जाएँ। उस पैसे से हर महीने युग साहित्य खरीदा जाए। परिवार निर्माण के संदर्भ में पिछला साहित्य भी मौजूद है आगे और भी नियमित रूप से छपेगा। मिशन की चारों पत्रिकाएँ व्यक्ति, परिवार और समाज के नव-निर्माण की पृष्ठभूमि बनाती हैं यह किसी से छिपा नहीं है। हर घर में दो ज्ञान घट रखे जा सकें तो एक घट की राशि से चारों पत्रिकाएँ और दूसरे की राशि से पुस्तकें नियमित रूप से मँगाई जा सकती हैं। पिछले दिनों जो उपेक्षा बरती जाती रही है, उसके प्रायश्चित्त स्वरूप अधिक राशि एकबार ही निकालकर घरेलू ज्ञान मंदिर की स्थापना के लिए इस संदर्भ की इकट्ठी पुस्तकें मँगाकर इस स्थापना का शुभारंभ किया जा सकता है।

परिवार में यदि युग साहित्य नियमित रूप से पढ़ा जाने लगे तो राम परिवार को वशिष्ठ के सान्निध्य का जो लाभ मिलता रहा था प्रायः वही लाभ परिवार निर्माण अभियान के हर सदस्य को मिलता रह सकता है। ज्ञान घट की स्थापना युग साहित्य की व्यवस्था और अनिवार्य स्वाध्याय की प्रथा परंपरा जिन घरों में चल पड़े समझना चाहिए वहाँ त्रिवेणी संगम जैसा सुयोग बना। यह प्रयास किसी धूम-धाम के साथ अपनी गरिमा का डंका भले ही पीटे किंतु इतना निश्चित है कि जिन परिवारों में इस प्रचलन को अवसर, स्थान मिलेगा उनमें सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन होगा और उनका सत्परिणाम पूरे परिवार को मिलेगा।

(५) सत्संग का श्रवण—

सत्संग की महिमा शास्त्रकारों ने विस्तारपूर्वक गाई है। कथा श्रवण का पुण्य सर्वविदित है। धर्म क्षेत्र में इनकी चर्चा भी होती रहती है, पर इनका उपयुक्त अवसर कभी-कभी ही आता है। सो भी उनमें ऐसी सड़ी-गली वस्तुएँ मिलती हैं जिन्हें गले उतारने वाला उलटा भ्रम में फँसता और अस्त-व्यस्त बनता है। इन परिस्थितियों में नियमित सत्संग और सुनियोजित कथा श्रवण का समावेश इसी एक प्रक्रिया में संभव हो सकता है कि रात्रि की कथा कहने और सुनने की परंपरा आरंभ की जाए।

बच्चों को कहानियाँ सुनने का शौक होता है। इसमें मनोरंजन और उच्चस्तरीय प्रशिक्षण के दोनों तत्त्व हैं। प्राचीन काल में वृद्धाएँ घर के बालकों को कथा, कहानियाँ नियमित रूप से सुनाती थीं, उसके माध्यम से कोमल मनों पर सुसंस्कारिता की स्थायी छाप डालती थीं। देखने में 'नानी की कहानी' और वृद्धों का मनोरंजन भर प्रतीत होता है, पर वास्तविकता यह है कि यदि कथा श्रवण को उद्देश्य पूर्ण बनाया और सुनियोजित किया जा सके तो उसका सत्परिणाम हर दृष्टि से श्रेयस्कर हो सकता है।

पंच-तंत्र नामक कथा ग्रंथ का निर्माण-उद्दंड राजकुमारों को विनोद और शिक्षण का समन्वय करके सत्शिक्षण गले उतारने के लिए किया गया था। वह पूर्णतया सफल हुआ। उसी प्रक्रिया को घरों

में कथा, प्रचलन के माध्यम से हर घर में पुनर्जीवित किया जा सकता है। व्यक्ति संपर्क से चलने वाले सत्संग की यह अति सरल किंतु चमत्कारी परिणाम उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया है।

घर की कोई सुयोग्य महिला इस उत्तरदायित्व को उठाए। समय नियत रहे। एक-दो कथा कहानियाँ नियमित रूप से कहने की शैली में मनोरंजन और विषय में प्रभावोत्पादक तत्त्व होंगे तो न केवल बालक वरन् बड़ी आयु के भी सब लोग उसे चाव पूर्वक सुनेंगे। मासिक युग निर्माण योजना में दस वर्ष तक प्रेरक जीवन गाथाएँ छपती रही हैं; उन अंकों को इधर-उधर से संग्रह किया जा सकता है और उनमें छपे प्रसंगों को कथा रूप में कहा जा सकता है। युग साहित्य में सस्ते जीवन चरित्र भी इसी उद्देश्य के लिए छापे गए थे। प्रायः एक घंटे में एक पुस्तिका भली प्रकार सुनाई जा सकती है। इस तरह कथा साहित्य की आरंभिक आवश्यकता इस प्रकार पूरी हो सकती है। पौराणिक कथाओं में से जिनमें जितने अंश में प्रेरक तत्त्व हैं उन्हीं को कथा प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इसी प्रकार बाल साहित्य में से भी आदर्शवादी शिक्षण दे सकने वाली कहानियाँ छाँटी जा सकती हैं। कहानी कहने वाला दिन में जहाँ-तहाँ से प्रेरक कहानियाँ ढूँढ़े और रात को सुनाए। इसमें कठिनाई पड़ती हो तो युग साहित्य में छपे कथा प्रसंगों को पढ़कर सुनाते रहने से भी यह कार्य मजे में चलता रह सकता है। कथा श्रवण का सत्संग क्रम परिवार निर्माण के महान कार्य में परोक्ष रूप से अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ेगा।

नमन वंदन-वलि वैश्व, आरती कीर्तन, स्वाध्याय प्रचलन कथा श्रवण के उपरोक्त पाँचों कार्य ऐसे हैं जो हर घर में सरलता पूर्वक आरंभ किये जा सकते हैं। कार्यों के छोटे स्वरूप को देखते हुए बड़े परिणाम की आशा सामान्य बुद्धि से नहीं की जा सकती किंतु यदि इन्हें कार्यान्वित किया जा सके तो प्रतीत होगा कि इन प्रयत्नों का सम्मिलित परिणाम कितने प्रतिफल प्रस्तुत करता है।

❐ ❐

पारिवारिक पंचशीलों का पालन

इन पाँच धर्म कृत्यों से परिवार में धार्मिकता का वह वातावरण बनता है जिससे परिवार के सदस्यों को सुसंस्कारिता का पोषण मिल सके, लेकिन यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये कृत्य मात्र चिन्ह पूजा मात्र बनकर न रह जाएँ। इसके लिए परिवार में कुछ सत्प्रवृत्तियों को विकसित और प्रचलित करने के लिए भी प्रयास किया जाना चाहिए। इस तरह की सत्प्रवृत्तियों में पाँच प्रमुख हैं, जिन्हें पंचशील कहा गया है। भगवान बुद्ध ने मनुष्य जाति में अनेक वर्ग किए और इन वर्गों के लिए उनके कार्य क्षेत्र के अनुरूप पाँच-पाँच प्रमुखशील अनुशासन बनाए—निर्धारित किए, शासन, समाज, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य उपार्जन आदि विभिन्न क्षेत्रों में निर्दिष्ट मर्यादाओं का पालन ही शील है, इनकी संख्या पाँच-पाँच निर्धारित की गई है। इसलिए उन्हें पंचशील कहा गया है।

यहाँ पारिवारिक पंचशीलों का प्रसंग है—(१) सुव्यवस्था (२) नियमितता (३) सहकारिता (४) प्रगतिशीलता (५) शालीनता की पाँच सत्प्रवृत्तियों के रूप में समझा जा सकता है। इन्हें अपनाने से व्यक्ति परिवार एवं समाज को उन विकृतियों से बचे रहने का लाभ मिलता है जो समस्त समस्याओं और विपत्तियों के लिए उत्तरदायी हैं। इन्हें अपनाने में सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार खुलता है और उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर चल पड़ने का अवसर मिलता है।

(१) सुव्यवस्था

पंचशीलों में प्रथम है—'सुव्यवस्था'। अपने आपको, अपनी क्षमताओं को, साधनों को सुनियोजित सुव्यवस्थित रखने का नाम 'सभ्यता' है। असभ्य और अव्यवस्थित लोग न तो उपलब्ध साधनों का ही सदुपयोग कर पाते हैं और न कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त करने योग्य मनोयोग जुटा पाते हैं। साधन और अवसर अनेकों को

प्राप्त होते हैं। दक्षता और कुशलता भी बहुतों में होती है पर वे उन्हें व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित नहीं कर पाते। फलस्वरूप उन सफलताओं से वंचित रह जाते हैं जिन्हें वे नियमन एवं नियंत्रण की बुद्धि होने पर सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। सद्गुणों में सबसे प्रमुख—व्यवस्था ही है। महान् कार्यों को संपादित करने और बड़ी सफलताएँ पाने वालों में व्यवस्था बुद्धि की विशेषता ही उन्हें श्रेयाधिकारी बनाती है। इसी के अभाव में पिछड़ापन लदा रहता है और पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ती हैं।

वस्तुओं को सुंदर-सुसज्जित ढंग से यथाक्रम रखना, साथियों को उपयुक्त कामों में क्रमबद्ध रूप से लगाए रहना, साधनों को सँभालना और उन्हें उचित समय पर उचित कार्य में, उचित मात्रा में प्रयुक्त करना, उपार्जन और व्यय का संतुलन बिठाए रहना जैसे कौशल व्यवस्था बुद्धि के अंतर्गत ही आते हैं। आज की स्थिति और भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार की नीति अपनाना जिसमें कठिनाइयों से बचा जा सके और प्रगतिक्रम विधिवत् चलता रहे—दूरदर्शी सूझ-बूझ का काम है। शतरंज की चाल की तरह गोट उठाने से पहले बचाव और लाभ को पूरी तरह ध्यान में रखने की तरह ही जो भली प्रकार आगा-पीछा सोच लेते हैं, उन्हें असफलताओं और कठिनाइयों का सामना कम से कम ही करना पड़ता है। इस सद्गुण को हर व्यक्ति के जीवन क्रम में समाविष्ट करने के लिए हर परिवार में आरंभिक प्रशिक्षण और उनके परिपोषण का प्रबंध रहना चाहिए। स्मरण रखा जाए कि संसार में सबसे बड़ा पद 'व्यवस्थापक' का है। मैनेजर, गवर्नर, सुपरिन्टेण्डेंट आदि शब्दों से जिन उच्च पदों को सम्मानित किया जाता है, वस्तुतः वे अपने-अपने कार्यक्षेत्र के व्यवस्थापक ही होते हैं। यह कार्य घर-परिवार में वस्तुओं को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखने के माध्यम से आरंभ किया जा सकता है।

वस्तुओं की सुव्यवस्था का ही दूसरा नाम 'स्वच्छता' है जो देखने में सुंदर एवं सुसज्जित बनाती और नयनाभिराम लगती है। देखने वालों की दृष्टि में यह कलाकारिता एवं सुरुचि का परिचायक

है। इस प्रकार की रखी हुई वस्तुएँ अपनी मौन भाषा में यह प्रकट करती हैं कि हम किन्हीं सभ्य सुसंस्कृत हाथों की छत्र-छाया में रह रही हैं। यह प्रतिष्ठा और गौरव की स्थिति है। जहाँ वस्तुएँ अस्त व्यस्त, मैली-कुचैली, फटी-टूटी स्थिति में पड़ी हुई हों तो समझना चाहिए वहाँ आलस्य और प्रमाद का साम्राज्य है। कुरूपता और अस्वच्छता एक ही बात है। 'सत्यं, शिवम्' सुन्दरम्' की प्राप्ति में प्रथम सौंदर्य, द्वितीय श्रेष्ठ और अंत में सत्य की प्राप्ति का क्रम है। प्राकृतिक सौंदर्य सृष्टा का विधान है। मनुष्य दूसरा सृष्टा है वह वस्तुओं को स्वच्छ और सुव्यवस्थित रखकर उन्हें सुंदर बनाए रहता है। सुसज्जता प्रकारांतर से स्वच्छता और व्यवस्था का ही सम्मिलित स्वरूप है।

संभव हो तो आरंभ में सफाई का एक घंटा रखा जाए, जिससे सब लोग मिल-जुलकर घर की प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखें और उसे अधिक सुव्यवस्थित, स्वच्छ एवं सुसज्जित बनाने का प्रयत्न करें। इस काम के लिए बुहारी, टोकरी, झाड़न जैसे अस्त्र-शस्त्र हाथ में लेकर चला जा सकता है। सुई, साबुन, आरी, हथौड़ा, चूना, वार्निश जैसे उपकरणों को अपनाने, और आगे रखने में उत्साह रखना चाहिए। मात्र झाडू लगाना ही काफी नहीं है। वस्तुओं का यथा स्थान, यथा क्रम रखना भी सूझ-बूझ और बुद्धिमत्ता का चिन्ह माना जा सकता है। जमीन, कोने, छतें बुहारी के सहारे स्वच्छ रखी जा सकती हैं। नालियों, रसोईघर, स्नानघर, शौचालय आदि को पानी के सहारे धोया जाता है। गंध दूर करने के लिए चूना, फिनायल, किरासन तेल आदि का प्रयोग करना होता है। मकान की टूट-फूट ठीक करने के लिए थोडे से सीमेंट और कन्नी-बसूली जैसे राज-मिस्त्रियों के हाथ में रहने वाले उपकरणों का प्रयोग सीखा जा सकता है। घर की लिपाई-पुताई मिल-जुलकर आसानी से हो सकती है। किवाड़ों और फर्नीचरों पर रंग-रोगन करनें में थोड़ा-सा खर्च और श्रम तो लगता है पर घर का स्वरूप ऐसा निखर जाता है मानों आज ही दिवाली मनाई गई है। घर, बर्तन, कपड़े और जूते सर्वत्र पड़े दीखते हैं। उन्हें यथा क्रम यथा स्थान लगाने की तब तक बार-बार चेष्टा करनी

चाहिए जब तक कि उनके उपयोग करने वाले स्वतः ही उन्हें साफ-सुथरी स्थिति में यथा स्थान रखने के बाद ही आगे बढ़ने के संबंध में अभ्यस्त न हो जाएँ।

चारपाइयों की चूलें तथा रस्सियाँ अक्सर टूटती रहती हैं, उन्हें सुधारने के लिए मिस्त्री की जरूरत नहीं पड़नी चाहिए। इसी प्रकार किवाड़ें, कुर्सी, मेजें, चौकियाँ आदि की समय-समय पर मरम्मत होती रहे तो उनकी मजबूती और शोभा बनी रहेगी। लालटेन, स्टोव, बर्तन आदि की टूट-फूट संभाल देने में ताश खेलने जितनी बुद्धि लड़ाने से काम चल सकता है। पुस्तकों की जिल्दें घर पर बन सकती हैं। कपड़ों की मरम्मत, सिलाई, धुलाई, रँगाई का अधिकांश काम घर पर ही किया जा सकता है। आँगन में फूल और छत्त पर सब्जियाँ उगाने का काम—पक्षी पालने से अधिक मनोरंजक है साथ ही लाभदायक भी। इस प्रकार के अनेकों काम घर में हो सकते हैं जिनसे अव्यवस्था हटाने और सुव्यवस्था बढ़ाने के—गंदगी भगाने और सुंदरता बढ़ाने के उभयपक्षीय प्रयोजन पूरे हो सकें।

एक घंटा नित्य सब छोटे-बड़ों को साथ लेकर सफाई अभियान में लगाया जाए। सुसज्जता के लिए श्रमदान कराया जाय तो धीरे-धीरे उनका दृष्टिकोण सुव्यवस्था का बनने लगता है। व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुओं को तो हर व्यक्ति स्वच्छ सुसज्जित रखे ही साथ ही दूसरों द्वारा बरती गई अव्यवस्था को देखते ही संभाल देने का उत्साह दिखाएँ। साप्ताहिक छुट्टी का दिन तो विशेष रूप से इस काम में लगाया जाना चाहिए। हर सदस्य को इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि अपने निजी साधनों को ही नहीं घर की हर वस्तु को स्वच्छ-सुसज्जित रखने में परामर्श एवं योगदान देते रहें। यह सत्प्रवृत्ति देखने में छोटी प्रतीत भले ही होती है पर अंततः स्वभाव का अंग बनकर बड़े उत्तरदायित्वों को निभाने और उच्चस्तरीय सफलताएँ प्राप्त करने का मूलभूत कारण सिद्ध होती है।

(२) नियमितता

श्रम और समय के समन्वय को नियमितता कहा गया है। समय ही जीवन है। उसका एक-एक पल हीरे-मोतियों में तोलने योग्य है।

एक क्षण भी बेकार नहीं गँवाना चाहिए। ईश्वर प्रदत्त दिव्य संपदा 'समय' ही है। उसके मूल्य पर हर स्तर की विभूतियाँ एवं सफलताएँ प्राप्त हो सकती हैं। समय गँवाना अर्थात् जीवन के ऐश्वर्य एवं आनंद को बर्बाद करना। परिवार की परंपरा में इस आदर्श का सावधानी के साथ समावेश होना चाहिए कि कोई भी व्यर्थ समय न गँवाए। इसे श्रम के साथ जोड़े रहें। श्रम से जी चुराना व्यर्थ के कामों में समय गुजारना, परिश्रम में असम्मान अनुभव करना ऐसे दुर्गुण हैं जिनके रहते पिछड़ेपन से, दरिद्रता से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है। शारीरिक आलस्य और मानसिक प्रमाद यही दो सबसे बड़े शत्रु हैं जिन्हें प्रश्रय देने वाला दुर्भाग्यग्रस्त रहता और दुर्गति के गर्त में गिरता है।

श्रमशीलता मनुष्य की उच्चस्तरीय सत्प्रवृत्ति है। काम को ईश्वर की पूजा माना जाए। श्रम से सम्मान अनुभव किया जाए। श्रम में शरीर घिसता नहीं वरन् परिपुष्ट होता है। अपने कार्यों का स्तर एवं स्वरूप प्रशंसनीय बनाए रहने में मनुष्य की प्रतिष्ठा है। स्फूर्तिवान्-दीर्घजीवी होते हैं। परिश्रमी के पास दरिद्रता नहीं फटकती और न दुर्गुणों को अपनाने, दुर्व्यसनों से ग्रसित होने का अवसर मिलता है। समृद्धि, प्रगति और सफलता की सिद्धियाँ साधना से ही उपलब्ध होती हैं। जो समय की बर्बादी को बचा सके और उसे अभीष्ट दिशा में क्रमबद्ध रूप से लगाए रहे सफलताओं ने उन्हीं का चरण चूमा है। आलसी और प्रमादी, कामचोर, हरामखोर और समय गँवाने वाले ऐसे अभागे हैं जो अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारते और आत्म प्रताड़ना—लोक-भर्त्सना का त्रास सहते हैं। भविष्य तो उनका अंधकारमय रहता ही है।

परिवार की परंपरा यह रहनी चाहिए कि हर सदस्य अपनी दिनचर्या बनाए। परिश्रम में जुटा रहे। बीच-बीच में जितना विश्राम नितांत आवश्यक है उतना ही ले। मंदगति से काम न करे। प्रमादवश कामों को अधूरा न छोड़े। समाप्त करने या बीच में रोकने के समय वस्तुओं को बिखरा न पड़ा रहने दे। जो भी काम हाथ में हो उसे पूरे मनोयोग एवं परिश्रम के साथ—प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर संपन्न

करे। श्रमशील रहने और समय का सदुपयोग करने का महत्त्व जिसने जान लिया और दिनचर्या बनाकर योजनाबद्ध रूप से काम करने का अभ्यास कर लिया—समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने की कुँजी उसके हाथ आ गई।

गृह व्यवस्थापक का कर्त्तव्य है कि वह समस्त परिजनों को उनकी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप दिनचर्या बनाकर काम करने के लिए सहमत करें। आरंभ में कुसंस्कारिता इसमें बहुत बाधक होती है। अनगढ़ पशु-प्रवृत्ति आवारागर्दी पसंद करती है। उसे अनुशासन में बाँधने और आलस्य पर अंकुश लगाने में बड़ी अड़चन होती है और बहानेबाजी चलती है। इस स्थिति को बदलना ही होगा। व्यस्त रहने का स्वभाव बनाना ही चाहिए। हर काम समय पर और क्रमबद्ध रूप में होना चाहिए। इस आवश्यकता को परिवार के सभी लोग अनुभव करें। उसके लिए सफल मनुष्यों की दिनचर्या का समय-समय पर उल्लेख करते रहना चाहिए। हर काम का समय निर्धारित हो। सभी अपना काम नियत समय पर नियमित रूप से करें। विशिष्ट परिस्थिति में—अनिवार्य कारण होने पर ही व्यतिक्रम के अपवाद होने चाहिए। आत्मानुशासन का अभ्यास इसी प्रकार होता है कि शरीर को श्रम में और मन को उत्कृष्ट स्तर का बनाने के लिए उत्कृष्ट चिंतन में लगाए रखा जाए। जिसने समय का मूल्य समझा है उसी ने जीवन लाभ लिया है। जो परिश्रमी रहा है उसी को व्यक्तित्व निखारने और सफलताएँ पाने का श्रेय मिला है।

महिलाओं के समय की बर्बादी इसीलिए होती है कि उनसे संबंधित काम दूसरों के समय पर न आने के कारण अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं। उनका तीन चौथाई समय इसी में नष्ट होता है। अन्यथा वे गृह कार्यों को कुछ ही घंटों में निपटा कर अन्य उपयोगी कामों में लग सकती हैं।

(३) सहकारिता

सहकारिता प्रगति का मूलमंत्र है। इसी विशिष्टता को अपनाकर मनुष्य ने इतनी प्रगति की है। जहाँ भी वह सत्प्रवृत्ति ज़ितनी मात्रा में अपनाई जाएगी वहाँ उसी अनुपात में सद्भावना की वृद्धि होगी,

घनिष्ठता बढ़ेगी। मिल-जुलकर काम करने से काम का आनंद भी बढ़ता है और स्तर भी। अधिक सुयोग्यों से सीखने और कम योग्यों को सिखाने का अवसर तभी मिलता है जब साथ-साथ काम करने की आदत डाली जाए।

स्वच्छता अभियान में मिल-जुलकर घर के काम करने की बात कही गई है। उस आधार पर सहकारिता भी पनपती है। भोजन खाने में ही नहीं, पकाने में भी यदि सहकारी प्रयत्न चल सकें तो उससे अच्छा-खासा मनोरंजन भी रहेगा और अभ्यास भी बढ़ेगा। कपड़े धोने में, टूट-फूट की मरम्मत में, पुताई-रँगाई में सहकारी प्रयत्न घर को स्वच्छ और सुव्यवस्थित ही नहीं रखते—सहकारिता की सत्प्रवृत्ति को भी बढ़ाते हैं।

अधिक योग्यों को कम योग्यों की ज्ञानवृद्धि एवं प्रगति में स्थिति के अनुरूप सहायता करने का ध्यान रखना चाहिए। अधिक पढ़े, कम पढ़ों को पढ़ाया करें। छोटी आयु के, बड़ों के कामों में हाथ बटाया करें। एकाकीपन दूर किया जाए। रिजर्व नेचर के अपने तक सीमित रहने वाले व्यक्ति या तो स्वार्थी बन जाते हैं या आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित होकर अनगढ़, असामाजिक रह जाते हैं। अस्तु परिवार व्यवस्था के हर कार्य में सहकारी प्रयत्नों को यथा संभव अधिकाधिक स्थान दिया जाना चाहिए।

(४) प्रगतिशीलता

भौतिक दृष्टि से आगे बढ़ने और आत्मिक दृष्टि से ऊँचे उठने की प्रक्रिया को प्रगतिशीलता कहते हैं। मात्र महत्त्वाकाँक्षाएं गढ़ते रहने से कोई कुछ नहीं बनता। परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ऊँची उड़ानें उड़ते रहने वाले योग्यता एवं साधनों के अभाव में कुछ कर नहीं पाते। अतृप्त महत्त्वाकाँक्षायें खीझ और निराशा ही पैदा करती हैं। अस्तु हवाई उड़ानें उड़ने से रोकना और प्रगति के लिए आवश्यक योग्यता बढ़ाने में ही हर परिजन को मनःस्थिति नियोजित करनी चाहिए। सफलताओं की लालसा तभी सार्थक है, जब उसके उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए प्रबल प्रयास किया जाए। इसके लिए

योग्यता बढ़ाना भी आवश्यक है अन्यथा अक्षमता के रहते, मात्र परिश्रम से भी कुछ बड़ा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

इस संदर्भ में परिवार के सदस्यों को सुशिक्षित बनाने के लिए अध्ययन का—बलिष्ठ बनाने के लिए व्यायाम का—कुछ कमाने के लिए गृह उद्योगों का—शिल्प-कौशलों का गायन-वादन का—चस्का लगाया जाए और उसके लिए साधन जुटाए जाएँ। वर्तमान स्थिति में अगले दिनों अधिक सुयोग्य बनने के लिए अवसर मिल सकें, इसके लिए जहाँ जो संभव हो, किया जाना चाहिए। संपदा की ललक कभी-कभी इतनी आतुर हो जाती है कि वह योग्यता बढ़ाने और पुरुषार्थ करने की अपेक्षा अनीतिपूर्वक संपदा, सफलता पाने के लिए मचलने लगती हैं। अस्तु महत्त्वाकांक्षाओं को योग्यता एवं सक्रियता बढ़ाने में नियोजित करने के लिए हर परिवार में कुछ न कुछ प्रयत्न चलना चाहिए। ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए कहाँ, किस प्रकार क्या हो सकता है, इसको खोजने से उपयुक्त मार्ग निश्चित रूप से मिल जाते हैं।

(५) शालीनता

शिष्टता, सज्जनता, मधुरता, नम्रता आदि सद्‌गुणों के समुच्चय को शालीनता कहते हैं। ईमानदारी, प्रामाणिकता, नागरिकता, सामाजिकता की मर्यादाओं को निष्ठापूर्वक अपनाना आलोचना का चिन्ह है। सामान्य शिष्टाचारी की अपनी महत्ता है। दूसरों का सम्मान करने और अपने को विनम्र सिद्ध करने के लिए वाणी में मिठास और व्यवहार में शिष्टता का समावेश रहना चाहिए। उदारता, सेवा, सहायता की सत्प्रवृत्ति अपनाने से ही दूसरों का स्नेह, सम्मान एवं सहयोग मिलता है। परायों को अपना बनाने की जितनी शक्ति शालीनता में है उतनी प्रलोभन देकर फुसलाने तथा दबाव देकर विवश करने में भी नहीं है। शालीनता जन-जन के मन पर आधिपत्य जमाने की असाधारण विशेषता है। इससे घर के हर सदस्य को परिचित एवं अभ्यस्त कराया जाना चाहिए।

इन पारिवारिक पंचशीलों का किस घर में किस प्रकार अभ्यास किया जाए, इसका ऐसा नियम नहीं बन सकता जो सब पर समान

रूप से लागू हो क्योंकि हर घर-परिवार के सदस्यों की स्थिति अलग-अलग होती है अतः निर्धारण एवं क्रियान्वयन अवसर के अनुरूप ही किया जाना चाहिए किंतु सिद्धांत रूप में परिजन कुछ मोटी-मोटी बातें ध्यान में रखकर चलें तो परिजनों में वैसे सद्गुण व सत्प्रवृत्तियाँ निश्चित रूप से बढ़ेंगी ही। उदाहरण के लिए व्यवस्था संबंधी अभ्यास के संदर्भ में घर के बड़े सदस्यों को चाहिए कि वे छोटों को साथ लेकर चलें। स्वयं भी इस कार्य को करें और अन्य सदस्यों से भी कराएँ। स्वयं करने और दूसरों से कराने का सही तरीका यही है। दूसरों को निर्देश परामर्श देना है तो अच्छा, पर आदतें बदलने और ढर्रे को मोड़ने में इतने भर से अभीष्ट उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। आदर्श बदलने का तरीका एक ही है कि जो उपयुक्त है उसे क्रियात्मक रूप से अपनाने और व्यवहार में उतारने का प्रयत्न किया जाए। अभ्यास के लिए कुछ कार्यक्रम निर्धारित करने पड़ते हैं। बहुत समय तक उन्हें करते रहने से पुरानी आदतें छूट जाती हैं और नए निर्धारण स्वभाव का अंग बनकर अपने आप सामान्य जीवन क्रम का अंग बन जाते हैं।

घर को स्वच्छ, सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित रखने के लिए क्या किया जाए ? यह प्रश्न कभी पूछा ही न गया हो तो बात दूसरी है, अन्यथा दृष्टि दौड़ाने पर चप्पे-चप्पे पर बिखरे हुए काम सामने आकर खड़े हो जाते हैं। यह शोध दृष्टि है, जिसे विकसित करने पर अवांछनीयताओं को छोड़ने और उपयोगिताओं को अपनाने के लिए सोचने और करने जैसा सूझने लगता है।

गंदगी को हटाने का ही एक काम हाथ में लिया जाए तो प्रतीत होगा कि यह इतना अधिक है कि पूरे परिवार को कई दिनों तक उसमें जुटाए रखा जा सकता है। टूट-फूट की मरम्मत के ढेरों काम ढूँढे जा सकते हैं। सुंदर और सुसज्जित बनाने के लिए पुताई रँगाई जैसे कामों की एक सूची बन सकती है। इन्हें मिल जुलकर किया जा सके तो सब में सृजनात्मक प्रवृत्ति पनपेगी और अस्त व्यस्तता, अस्वच्छता एवं कुरूपता को हटाने की आवश्यकता अनुभव करने का स्वभाव बनेगा। भोजन बनाने, कपड़े धोने जैसे कामों को

भी कभी मिल जुलकर किया जा सकता है। उसमें शिक्षा का उपक्रम भी साथ-साथ चलता रहेगा। सामूहिकता उत्साह बढ़ाती है, यह सर्वविदित है। बड़ों का अनुकरण छोटे करते हैं। अभ्यास न होने और संकोच लगने की कठिनाइयाँ आमतौर से प्रगति पथ पर नए चरण बढ़ाने में मुख्य अड़चन हैं। इन्हें घर संभालने में सामूहिक प्रयासों का कार्यक्रम बनाकर सहज ही दूर किया जा सकता है। नित्य, तीसरे दिन, सप्ताह में एक बार जहाँ जिस प्रकार बन पड़े, ऐसा निर्धारण हर घर में रहना चाहिए। करते समय या आगे-पीछे उस संभाल प्रक्रिया के हर पक्ष को बताने का क्रम समय-समय पर जारी रखा जाए और उस कथन के प्रमाण, उदाहरणों को बताया जाता रहे।

पारिवारिक पंचशीलों में जिन पाँच सत्प्रवृत्तियों का उल्लेख है, उनको परिजनों के स्वभाव का ढँग बनाने के लिए ऐसी गतिविधियों को जन्म देना पड़ेगा, जिनके सहारे उन्हें परिजनों के स्वभाव का अंग बनाया जा सके। गृह संचालकों को समय की कमी का रोना नहीं रोना चाहिए। पैसा कमाना ही मात्र एक काम नहीं है। उतने भर से परिवार के भरण पोषण की आवश्यकता तो पूरी हो सकती है, पर संस्कारों का अभिवर्धन कभी नहीं हो सकता। यदि समझ काम दे तो यह तथ्य स्वीकार करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होगी कि गुण, कर्म, स्वभाव के समन्वय से बना हुआ व्यक्तित्व ही मनुष्य की वास्तविक पूँजी है। यह वैभव जिसके पास जितनी मात्रा में होगा वह उसी अनुपात से प्रभावशाली, संपत्तिशाली और सौभाग्यशाली बनेगा। अस्तु सच्चे अर्थों में परिजनों का हित चाहने वालों को उनके लिए साधन सुविधा जुटाने तक ही सीमित होकर न रह जाना चाहिए वरन् संस्कारों के संबर्धन का यह कार्य भी हाथ में लेना चाहिए जो दूसरों से नहीं कराया जा सकता।

परिवार निर्माण की कल्पना कामना भर करनी हो तो बात दूसरी है, अन्यथा इस प्रयोजन के लिए समय निकालना और साथ रख कर व्यावहारिक अभ्यास करना आवश्यक है। इसके लिए उपार्जन के घंटों में कटौती करने की जरूरत नहीं है। शेष समय भी ऐसा है जो आमतौर से आलस्य, प्रमाद, दुर्व्यसन और गप-सप में

गुजरता है। उसे बचाया जा सके तो परिवार निर्माण के लिए परिजनों के साथ और मिल जुलकर काम करने के अभ्यास से उन्हें कुछ से कुछ बनाया जा सकता है।

यदि इन पाँचों विभूतियों से घर के प्रत्येक सदस्य को अलंकृत करने का प्रयास चलता रहे तो समय-समय पर वे उपाय भी सामने आते रहेंगे कि किसमें क्या कमी है ? और इस कमी को किस प्रकार पूरा किया जा सकता है ? पंचशीलों से परिवार को भरने का प्रयत्न ऐसा ही है जैसा पाँच रत्नों के भंडार से घर को भरना और कुबेर से अधिक वैभववान बनना।

प्रत्येक गृह संचालक को अपने परिवार में धार्मिकता का वातावरण बनाने तथा परिवार के सदस्यों में पाँच सत्प्रवृत्तियों, पंचशीलों को सबके स्वभाव में सम्मिलित करने, उनके स्वभाव का अंग बनाने के लिए सतर्कतापूर्वक संलग्न रहना चाहिए। इसका सबसे कारगर और प्रभावशाली तरीका यही है कि गृह संचालक इसके लिए समय निकाले और प्रत्येक समझदार परिजन भले वह गृहिणी हो या गृहपति, इसके लिए तत्पर रहे।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा